ISSN : 2321-3922
अक्टूबर-2023
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-11 अंक-34

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–11, अंक–33

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–दिसम्बर – 2023
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अक्टूबर–दिसम्बर – 2023

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी 2024 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

1.	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
2.	समीक्षा	नारीवाद उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ	डॉ. अमर सिंह वधान	06
3.	समीक्षा	सदी का सच : लघुकथा संसार	जीतेन्द्र कुमार	09
4.	समीक्षा	चेहरा दर चेहरा	दयानन्द जायसवाल	11
5.	कविताएँ	आषाढ़ी बरखा/पानी ही पानी है	गिरेन्द्र सिंह भदौरिया	12
6.	समीक्षा	नाच रही है पृथ्वी	दयानन्द जायसवाल	13
7.	कविता	व्यापार	सूर्य प्रकाश मिश्र	14
8.	समीक्षा	अगिनदेहा	दयानन्द जायसवाल	15
9.	कविता	यादें कभी खत्म नहीं होतीं	डॉ. संजय सिंह	16
10.	समीक्षा	असतो मा सद्गमय	दयानन्द जायसवाल	17
11.	समीक्षा	जीवन के चिथड़े पन्ने	राजीव कुमार ओझा	18
12.	समीक्षा	सच्चाई की तह से निकली कविता	डॉ. लव कुमार	19
13.	कविता	अनुनाद	गौरी शंकर वैश्य	20
14.	कविता	प्रतिभूति/अनिषाद	डॉ. अशोक गुजराती	20
15.	समीक्षा	'गंगा से काबेरी' जीवन्त कहानियाँ	विजय कुमार तिवारी	21
16.	समीक्षा	भीड़ और भेड़िए	डॉ. प्रदीप उपाध्याय	23
17.	समीक्षा	नया रास्ता	अनिता रश्मि	25
18.	समीक्षा	रोटी और लंगोटी	महेन्द्र नारायण सिंह	26
19.	समीक्षा	पत्रकारीय प्रयोगधर्मिता का वह अप्रतिम युग	डॉ. आर.के. नीरद	27
20.	आलेख	शहीद भगत सिंह के विचारों की प्रासंगिकता	दत्तात्रेय आसाराम किटाले	28
21.	आलेख	बुन्देली काव्य में समाज का सच	डॉ. अवधेश कुमार चन्सौलिया	30
22.	आलेख	विश्व साहित्यशास्त्र की प्रकल्पना	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	32
23.	आलेख	चापेकर बंधुओं का बलिदान	डॉ. उषा निगम	36
24.	लघुकथा	स्मृति अगर होती है	संजय वर्मा 'दृष्टि'	37
25.	आलेख	हिंदी–मराठी नाटकों में नारी–चित्रण	डॉ. रमा राहुल दुधमाड़े	38
26.	लघुकथा	सूर्यास्त	मौसमी चन्द्रा	40
27.	शोध आलेख	विदेशों में हिन्दी की संभावनाएँ और भविष्य	डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'	41
28.	कविता	सच का उद्घाटन	डॉ. सुनील त्रिपाठी	44
29.	आलेख	मानवीय संवेदनाओं से आपूरित तुम्हारा प्रतिरूप	सुश्री अमृता सिंह	45
30.	कविता	आखिर क्यों?	डॉ. अशोक सिंह	46
31.	लघुशोध	गणेश शंकर विद्यार्थी का अद्भुत प्रताप	कृष्ण कुमार यादव	47
32.	ग़ज़लें		हरिनारायण गुप्त	48
33.	लघुशोध	आदिवासी जनजाति के बहुविध संघर्षों के समक्ष उनके जनजीवन की चुनौतियाँ	अनामिका पंचकुमार कौशल	49
34.	गीत	यह समय/मेरे गीत तुम्हारे मीत	डॉ. अंजना वर्मा	50
35.	यात्रा–संस्मरण	एक महँगी भूल	राजेन्द्र 'नागदेव'	51
36.	कहानी	चौखट	रामेश्वर महादेव वाढ़ेकर	53
37.	लघुकथा	बिल का आकार/पंडितजी कहिन/अपनी रफ्तार	सत्यशुचि	55
38.	लघुकथा	मुँह पर थप्पड़	डॉ. शरद नारायण खरे	56
39.	लघुकथा	अनिता	डॉ. आशापुष्प	56

भूख

माँ! मुझे आज फिर
कुत्तों ने काट लिया
माँ! मैंने कहा था
मालिक के नौकरों को
'पत्तलें हमें दे दीजिए न'
पर उसने धक्के देकर कहा
'कुत्ते कहाँ जायेंगे'
हम साथियों और कुत्तों में
हम अधिक थे
फिर भी कुत्तों ने बाजी मार ली
तुम्हारे लिये माँ
फिर भी
कुछ पत्तलें तो ले ही आया हूँ
तुम तो कई दिनों से भूखी हो
चल भी नहीं सकती
मैं पत्तलें पोंछ–पोंछ कर
जमा करता हूँ, तुम खा लेना
ठहरो माँ
शाम को फिर जाऊँगा, शहर
पता लगाने
भोज फिर कहाँ है?

डॉ.गिरिजाशंकर मोदी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया तथा साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की और उसे सभ्य बनाने का कार्य किया। मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। इतिहास भी साक्षी है कि किसी भी देश या समाज में आज तक जितने भी परिवर्तन या बदलाव आए, उसमें साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

साहित्यकार समाज में फैली अनेक कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, अभावों, विषमताओं, असमानताओं आदि के बारे में लिखता है। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। साहित्य समाज और जनहित के लिए है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्गदर्शन करता है।

साहित्यकार से जिन बृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है, उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है, जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन–सी हैं और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?मानव अपने मन में उठनेवाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है, तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की शृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। संवेदना ही एक ऐसी चीज है, जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। संवेदनहीन साहित्य समाज को कभी प्रभावित नहीं कर सकता और वह मात्र मनोरंजन कर सकता है। सिर्फ मनोरंजन द्वारा ही साहित्य को जीवित रखना संभव नहीं है। साहित्य का कार्य चुनौती देना या लेना भी नहीं है। साहित्य 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' रचा जाता है। इस सर्व में निस्संदेह आत्म भी समाहित होता है। कोई भी रचना किसी प्रकार की निर्धारित औपचारिकताओं के अधीन नहीं होती। हमारा साहित्य हमें धार्मिकता, नैतिकता, सामाजिकता, नीति–राजनीति, आर्थिकता आदि सभी गुण सिखाता है। हमारे साहित्य में ज्ञान है, वैराग्य है, नीति है, शृंगार है, भक्ति है, प्रेम है, वात्सल्य है, करुणा है, ओज है, वीरता है, प्रकृति प्रेम है, जीव प्रेम है।

साहित्य के विकास की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव सभ्यता। अतः यह नितांत आवश्यक है कि साहित्य लेखन, संशोधन, परिवर्द्धन निरंतर जारी रहना चाहिए। अन्यथा सभ्यता का विकास ही अवरुद्ध हो जाएगा। समाज की क्रूरता, विध्वंसक प्रवृत्ति, साम्प्रदायिक कट्टरता एवं दिशा हीन नीतियों की विपरीत परिस्थितियों में भी भारतीय साहित्य सामाजिक जागरण की दिशा में अग्रणी रहा है। साहित्य ने सदैव से जीवन मूल्यों के रक्षार्थ की संघर्ष किया है। शोषित, पीड़ित समाज एवं आहत हुए समाज में पुनरुत्थान की भावना द्वारा शंखनाद किया है। नव्य क्रांति को खड़ा किया है, जिसमें जीवन मूल्यों के प्रति अगाध आस्था और निष्ठा रही है। भारतीय संस्कृति अत्यन्त विशिष्ट गुणों, जीवन मूल्यों एवं जीवनादर्शों के लिए वरेण्य है। भूमण्डलीयकरण ने हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं आत्मीय संबंधों पर सर्वाधिक चोट की है। इसने मानव जीवन के सभी पक्षों–धर्म, संस्कृति, राजनीति, व्यक्ति, समाज और विचार को गहराई से प्रभावित किया है। इसके दुष्प्रभावों को लेकर समस्त देशों का साहित्य चिंतित है। एक बहुत बड़ी आबादी का गाँव से शहर की तरफ तेजी से पलायन, विकासशील देशों में नगरी करण की प्रक्रियामें अभिवृद्धि, निम्न–जीवनस्तर, पारिवारिक विघटन, सामाजिक एवं पारिवारिक हिंसा में बढ़ोत्तरी, प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति की ओर झुकाव, सहनशीलता में कमी, व्यापार और अपराध के स्वरूपों में आश्चर्यजनक बढ़ोत्तरी को भूमंडलीयकरण के परिणाम के रूप में देखा जाता है। आकर्षण हमारे जीवन का केन्द्र बन गया है। हमारे सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मूल्य अपना महत्त्व खोते जा रहे हैं। बाजारवाद ने ऐसा मायाजाल का निर्माण किया है कि सारे मानवीय संबंध बाजार के मापदंड पर आँके जाने लगे हैं। इसकी संस्कृति ने सभी मूल्यों को आज अप्रासंगिक बना दिया है। सब कुछ से तार–तार होता जा रहा है।

भूमंडलीयकरण के इस दौर में वस्तुओं की चकाचौंध से सुख पाने इरादा रखनेवाले मानव ने रुपये के बल पर वस्तुओं का अंबार लगाया, पर अपने ही घर में वह सम्पूर्ण परिवार के बीच अकेला रह गया। रिश्तों के बीच गहरी आत्मीयता का समापन हुआ चुका मानवयंत्रवत् बन गया। अमीरी–गरीबी की खाई बढ़ गई। बाजार में

उत्पादों की कभी नहीं, लेकिन हर किसी के पास खरीदने की शक्ति नहीं। इस भूमंडलीयकरण के बाजारवाद ने साहित्य, समाज, संस्कृति को अत्यधिक प्रभावित किया। इस व्यवस्था से प्रभावित –व्यथित साहित्यकार का करुणगान साहित्य के रूप में प्रस्फुटित होने लगे ।ऐसी परिस्थिति में जीवनमूल्यों को पुनः स्थापित करना परम आवश्यक हो गया है।। साहित्य की सभी विधाओं में जीवन के प्रति आस्था और निष्ठा बढ़ानी होगी।

समीक्षा

नारीवाद उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक संदर्भ

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.
सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़,
मो. 9876301085

यह मनोवैज्ञानिक सच्चाई प्रबल है कि आधुनिक समाज में होने वाले परिवर्तन एवं घटनाओं का प्रभाव व्यक्ति के मन पर गहरे में पड़ रहा है, जिससे वह मानसिक तौर पर कई विकारों, विघटनों तथा जटिलताओं की गिरफ्त में आ गया है। ज्यादा गौर करके देखें तो पिछले दो विश्व युद्धों से त्रस्त एवं तीसरे विश्व युद्ध की आशंका से ग्रस्त मानव आज इतना अकेला एवं असहाय हो गया है कि वह घर, परिवार, समुदाय, समाज एवं देश में रहते हुए भी स्वयं को अजनबी, असंतुष्ट, निराश, मूल्यहीन तथा व्यथित महसूस करने लगा है। अपनी आर्थिक मजबूरियों के कारण वह वर्तमान को मशीनी सभ्यता का मात्र पुर्जा बनने को विवश है। वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक संघर्ष एवं टकराहट के कारण पुराने मान्यताएँ, आस्थाएँ एवं नैतिक मूल्य अर्थहीन हो गए हैं। अपने जीवन में उसे निराशा, वेदना, करुणा और नीरसता ही दिखाई देती है। सामाजिक विघटन से परिवार विखंडित हुए हैं एवं मानसिक परेशानियों को बढ़ावा मिला है। आज का मनुष्य अनुभव करता है कि उसका अस्तित्व एवं विकास अनेक शक्तियों से अनुशासित और नियंत्रित है, जिन पर उसका कोई वश नहीं है।

इसी यथार्थ जमीन पर 21वीं सदी की महिला उपन्यासकारों ने आज के मनुष्य के मन से जुड़ी अनेक स्थितियों, जटिलताओं और विडंबनाओं को अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक संदर्भों के निकष पर बड़े मार्मिकता से विवेचित, विश्लेषित एवं मूल्यांकित किया है। यहाँ यह ध्यान दिलाना आवश्यक है कि सिग्मंड फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण के सिद्धान्त में व्यक्ति के मन के चेतन, अवचेतन, अचेतन, लिबिडो, ऑडिपस ग्रंथि, इलेक्ट्रा ग्रंथि, मनःताप आदि मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की विस्तार में विवेचना की है। इसके अतिरिक्त उसने 'इदं' 'अहं' और 'परम अहं' की भी विश्वसनीय व्याख्या की है। आश्चर्य नहीं कि 21 वीं सदी के महिला उपन्यासकार मानव मनोविज्ञान की बारीक समझ तथा अपने औपन्यासिक कृतियों में इसके अनुप्रयोग कौशल में प्रवीण हैं।

चर्चित उपन्यासकार कृष्णा सोबती कृत 'समय सरगम' (2000) में नितान्त अकेले, कमजोर और जीवन से निराश हो चुके वृद्धजनों की कथा है। उपन्यास की आरण्या अकेली रहती है और अपनों के छोड़ जाने के दुःख को वह भूल चुकी है। लेकिन उसके भीतर का खालीपन और ऊब जगमगाती रहती है। उसका पड़ोसी हम उम्र ईशान भी अकेला है। उसका बेटा तेरह साल की उम्र में गुजर गया था। ईशान अर्धविक्षिप्त अवस्था में आकर कभी–कभी उसका सामान खोलकर समेटता रहता। है। वृद्धावस्था में खालीपन से उपजी अनेक समस्याओं का मार्मिक विवेचन इस उपन्यास में हुआ है। डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते हैं–''संबंधों की दृष्टि से संवेदनाशून्य होते जगत में बुद्ध जिस रूप में आज जीवन जी रहे हैं, वह उपन्यास का कथ्य बनता है।''[1]

इस उपन्यास में दमयंती आरण्या को अपनी व्यथित मानसिक स्थित के विषय में बताती है–''बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत के मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्या, मैं बहुत दुःखी हूँ।''[2] जब व्यक्ति अपने आपको व्यर्थ का जीव समझता है तो उसमें अजनबीपन, खालीपन बढ़ता है। यह निराशावाद ही चिंता का कारण है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हार्नी ने मनुष्य की 'मूलभूत चिंता' के तीन अंग बताए हैं–असहायता का भाव, द्वेष भाव और अकेलेपन का भाव। 'समय सरगम' में वृद्धजनों में व्याप्त असहायता एवं अकेलेपन के भाव को उच्च सीमा पर चित्रित किया गया है–''अपने होने से जुड़ी हैं संभावनाएँ और बूढ़ी हो चुकी आकांक्षाएँ तन–मन की ऊहापोह में झुंझलाते, कभी शांत, कभी रोग, बीमारी की चिंता से परेशान।''[3]

वैयक्तिक स्वतंत्रता और अस्तित्व के लिए संघर्षरत मृणाल पाण्डे का उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' (2000) आत्मकथात्मक शैली में रचित है। जहाँ यह उपन्यास नायिका मंजरी के जीवन संघर्ष को जीवंत तस्वीर है, वहीं यह बदलते समाज का यथार्थ चित्रण भी है। मंजरी में यह जानने की छटपटाहट है कि जो होता रहा है, यह क्यों होता रहा है। उसका विवाह एक धनी परिवार में होता है; लेकिन वह सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर पाती और समाज से कट जाती है। वह किसी खोल में छिप जाना चाहती है। पहले बेटी, फिर उसकी माँ की नृशंस हत्या मंजरी के लिए ऐसे असहनीय सदमें हैं, जो उसे भटकाते रहते हैं। उपन्यासकार ने मंजरी के आत्मसम्मान एवं अस्तित्व के लिए संघर्ष को मनोवैज्ञानिक धरातल पर बड़ी खूबसूरती से शब्दांकित किया है। मंजरी बहुत ही भयग्रस्त क्षणों से गुजरती हैं, ''कुछ क्षणों तक तो मैं पीपल के पत्तों से थरथराते अपने दिल की घड़घड़ाहट सुनती चुप बैठी रही।''[4]

मनोवैज्ञानिक यथार्थ में सत्य की अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है। इस नई सदी का यथार्थ मनुष्य को मानसिक स्थितियों को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। वह अपने को पृथक् अनुभव करता है, क्योंकि वह प्रकृति तथा दूसरे अन्य व्यक्तियों से भी अलग हो गया है। 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में मंजरी पहाड़ों पर से प्रकृति का विनाश करनेवाली शहरी संस्कृति के बारे में सोचकर क्षुब्ध होती है। वह कहती है–''आखिरी बार जब माँ के पास पहाड़ पर गई थी, तो देखा था कि बचपन से परिचित दर्जनों फलों के बाग–बगीचे, जो रेलगाड़ी पीछे छूटने के बाद घर के दरवाजे तक साथ–साथ आते थे, अब बुढ़ा गए हैं। कई बाग मैदानी बिल्डरों के हाथ बिक चुके थे, उनपर लगे चमकीले टीन के बोर्ड बताते। धीरे–धीरे यहाँ भी एक नई दुनिया उभरने लगेगी। ये सीढ़ीनुमा खेत समतल कर दिए जाएँगे और उन पर सीमेंट के गुलाबी नीले रंगों में पुते वीभत्स काटेज बन जाएँगे देखते–देखते। उनपर लगे टी.वी. के एंटेना कंकाल की उंगलियों की तरह दूर से चमकेंगे।''[5] स्पष्ट है कि औद्योगिक प्रगति और भूमंडलीकरण के प्रभावों से मनुष्य अपने को दूसरे मनुष्य से मानसिक तौर पर अलग समझकर अलगाव बोध से पीड़ित होता है।

इसी क्रम में अलका सरावगी का उपन्यास 'शेष कादंबरी' (2000) नारी अस्मिता के संघर्ष पर केन्द्रित है। उपन्यास की प्रमुख पात्र रूबी दी को जब मालूम होता है कि उसके माता–पिता उसके अपने नहीं और अपने माता–पिता उसे अपना नहीं मानते तो वह घोर उन्माद और मनःताप की स्थिति में पहुँच जाती है। लेकिन दो बेटियों के जन्म और पति के असहयोग से उबरने के बावजूद वह फिर पति की मृत्यु और बेटियों के चले जाने से असहाय स्थिति में स्वयं को पाती है। व्यक्तिगत विघटन, मानवीय संबंधों में बिखराव, नशेखोरी, आत्महत्या, समलैंगिकता और उत्तरआधुनिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में
हुआ है। लेखिका ने स्वातंत्र्य बोध और खालीपन के अंतर्संबंध को इस प्रकार व्यक्त किया है–''आपने कहा था कि आदमी के पास चुनने के लिए बहुत कम गुंजाइश होती है। वह अपना जन्म नहीं चुनता, अपने माँ–बाप नहीं चुनता,

अपना मरण नहीं चुनता और न ही जीवन के दु:ख चुनता है; लेकिन एक जगह होती है, उसकी स्वतंत्रता।''[6] वह अपने आस–पास, एकदम आस–पास, जो स्वर्ग–नरक बनाता है, वही उसकी स्वतंत्रता होती है। निराशा, व्यथा, विसंगति और शून्यता भरे जीवन में व्यक्ति ऊब जाता है। रूबी दी भी यही सोचती है कि खालीपन अथवा अजनबीपन उसकी नियति है।

जानी–मानी उपन्यासकार एवं समाजसेविका कुसुम अंसल का 'तापसी' (2003) उपन्यास वृन्दावन की विधवाओं के नारकीय जीवन पर आधारित है। उपन्यास में तापसी एक वेश्या की लड़की है, जिसे माँ अपने पास न रखकर भाई के पास रखती है। पैसों के लालच में उसका मामा तापसी का विवाह दुगुनी उम्र के और नपुंसक नरेन मजूमदार से करता है। संत्रासग्रस्त होकर वह पति के हर जुल्म को सहती है। घोर शारीरिक और मानसिक यंत्रणाएँ सहते–सहते वह भीतर से बुरी तरह टूट जाती है और उसका व्यक्तित्व कुंठित होकर रह जाता है। वहाँ पर विधवा आश्रम में रहते हुए नाजायज कुकर्मों एवं भ्रष्टाचार को देखकर यह अंदर तक हिल जाती है। स्टेशन पर जाते हुए पैर फिसलने से वह गंभीर रूप से जख्मी हो जाती है और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। उसका लावारिस शव दयनीय स्थिति में वहाँ पड़ा रह जाता है। लेखिका ने लिखा है–''मृत प्रश्न भीमकाय रेलगाड़ियों के पहियों तले कुचल जाते हैं। परन्तु कुछ प्रश्न शाश्वत होते हैं।''[7] उपन्यासकार ने यौन कुंठा, समलैंगिकता, बाहरी दुनिया की झूठी शानशौकत का भी सच्चा चित्रण किया है।

'तापसी' में मलय के प्रेम को अपने अहं और वैयक्तिकता के कारण तापसी ठुकरा देती है, जो उसके अंतहीन व्यर्थता बोध का सबब बनता है–''उस वाक्य पर कितना अभिमान जागा था तापसी के भीतर। अवचेतन की सभी कुंठाओं के ऊपर रखा कौर्नल यूनिवर्सिटी का वह पत्र कागज का छोटा–सा टुकड़ा उसकी उपलब्धि, उसकी ईगो एक विशिष्ट आविष्कार।''[8] मनोवैज्ञानिक गवाही के मुताबिक मनस्ताप से पीड़ित व्यक्तियों में दुश्चिन्ता, भय, हठप्रवृत्ति की प्रधानता होती है। इनके प्रभाव से व्यक्ति में परायापन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। 'तापसी' उपन्यास में बीते समय की प्रसिद्ध अभिनेत्री जयमाला अपने मानसिक ताप से पीड़ित होकर तापसी और नन्दिता से कहती है, ''यहाँ सब कुछ नाटक है, सच्चाई कुछ भी नहीं है। हर स्त्री, हर पुरुष सभी 'इंडीवीजुअल' बस, अपने आपसे प्रेम करते हैं। इसके सिवा केवल अपने वजूद से और किसी से भी नहीं और अपने–अपने शरीर की परितृप्ति के लिए वह केवल एक दूसरे के जिस्म का प्रयोग करते हैं और कुछ नहीं ...तापसी, नन्दिता, वह अपमान मुझे आज भी हौन्ट करता है।''[9]

मृणाल पांडे का एक अन्य उपन्यास 'अपनी गवाही' (2003) पत्रकारिता और मीडिया के मनोवैज्ञानिक रेशों को सशक्तता से उभारता है। उपन्यास की नायिका कृष्णा जिस पत्रिका में काम करती है, वहाँ के मुख्य संपादक नीरज एक खोखले, दिखावटी और मुखौटाधारी चरित्रवाले हैं। उनके अनैतिक संबंध भी हैं। गाँव
में कृष्णा को अकेली रहती माँ जब बीमार पड़ती है, तो छुट्टी माँगने पर कृष्णा के साथ चैनल की मालकिन जया बड़ी बदसलूकी से पेश आती है। इसपर कृष्णा नौकरी छोड़कर चली जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब व्यक्ति प्रकृति एवं अन्य मनुष्य से पृथक् हो जाता है, तो यह अजनबी–सा महसूस करता है, ''कृष्णा को लगा कि उसके अंदर कुछ टूट गया है और अब वह किसी काम की नहीं रह जाएगी। उसके पुराने सभी साथी और मौज–मजे वाली सहेलियाँ भी कहीं छूट गई थीं। काम का अजीबोगरीब समय और उससे भी ज्यादा अजीबोगरीब काम की प्रकृति ने उन सबको दूर छिटका दिया था। ...वह वहाँ अकेली ऐसी जान थी, जो मानती थी कि वह सचमुच कुछ करने आई थी, सिर्फ निर्देशों, आदेशों और गाइडलायन्स में उलझने नहीं।''[10]

कोलकाता की प्रसिद्ध उपन्यासकार मधु कांकरिया के उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिकों का यथार्थ चित्रण रहता है। उन्होंने मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति की हो रही उपेक्षा, नशेखोरी, आत्महत्या और अपराधों का सजीव विवरण प्रस्तुत किया है। आज महानगरों में व्यक्ति इतना पराया और अकेला हो गया है कि वह नशे में हो आश्रय ढूँढता है। मधु कांकरिया ने ठीक ही लिखा है–''एक तरफ समाज को रग–रग में तनाव, कुंठा, और असंतोष व्याप रहा है, युवाओं को हर तरफ अंधी और अवरुद्ध गलियाँ नजर आ रही हैं। लगातार खुलते बाजार की चकाचौंध से मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग का युवा स्तब्ध है। नतीजा भटकाव और विकृति। नशे के लिए व्यक्ति खुद जिम्मेदार है या हमारी सामाजिक आर्थिक वास्तविकताएँ, कहना कठिन है।''[11] उनके चर्चित उपन्यास 'पत्ताखोर' में एक ऐसे खोए हुए युवक आदित्य की कथा है, जो अपने माता–पिता के होते हुए भी घोर उपेक्षित है। आदित्य को बुरी संगत में पड़ने पर 'हेरोइन' की लत लग जाती है। अपनी ऊब और घुटन से उभरने के लिए वह पत्ताखोर बन जाता है। गरीब लोगों के बीच रहकर उसके जीवन में सकारात्मक बदलाव आता है और उनकी भलाई करने में जुट जाता है। घुटन, कुंठा, विषाद और तनाव अब उसे बहुत छोटे लगने लगते हैं। वह अपनी माँ से कहता है–''याद रखना माँ, आदमी अपने लिए जीता हुआ भी दूसरों के लिए जी सकता है, अन्यथा वह टूट जाता है, बिखर जाता है।''[12]

फ्रायड ने व्यक्ति मन की चेतन, अवचेतन और अचेतन स्थितियों का उल्लेख किया है। चेतन वर्तमान ज्ञान से, अवचेतन अन्त:निरीक्षण से प्राप्त किए गए ज्ञान से संबंधित है। अचेतन मन में विरोधी इच्छाओं अथवा विचारों का संघर्ष चलता रहता है, जिसकी चेतना नहीं रहती। 'पत्ताखोर' उपन्यास में प्रोफेसर नशे की लत से ग्रस्त लड़कों को समझाते हुए हाथी के बच्चे का उदाहरण देता है, जो बचपन में पतली रस्सी को छुड़ाकर भागने में सक्षम नहीं था। वह रस्सी वैसी ही रहती है और हाथी बड़ा हो जाता है। यदि हाथी चाहे तो उसे झटके में तोड़ सकता है, पर उसकी चेष्टा भी नहीं करता, क्योंकि उसका दिमाग कंडीशंड है। यही अभेद्य जंजीर।''[13] वास्तव में यही मानसिकता व्यक्ति के दु:खों और अजनबी होने का कारण होती है। फ्रायड ने अचेतन मन को एक 'आइसबर्ग' के समान माना है।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मनोविज्ञान में मनोलैंगिक विकास की पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं–मौखिक, गुदा, लिंग प्रधान, काम प्रसुप्ति और जननांगीय। प्रत्येक अवस्था में 'काम' प्रमुख है। वैसे 'लिबिडो' शब्द का प्रयोग भी काम शक्ति के लिए किया गया है। लेकिन 'लिबिडो' पहले व्यक्ति स्वयं के प्रति, फिर विपरीत लिंग के प्रति होती है। जननांगीय अवस्था में लैंगिक चेतना सक्रिय हो जाती है। 'पत्ताखोर' उपन्यास में अपनी जिज्ञासा शान्त न होने पर अकेलापन महसूस करता है। एक फिल्म में सेक्स की भूख सुनकर वह कहता है–'मैंने पापा से पूछा, सेक्स माने क्या होता है। उन्होंने थोड़े गुस्से से जवाब दिया, 'डिक्शनरी में देख लो' मैं समझ गया कि पापा स्कूली किताबों और पढ़ाई के अलावा पिक्चर संबंधी बातचीत में मेरा समय जाया नहीं करना चाहते, लिहाजा मैंने अमिताभ बच्चन के पहलेवाले डायलॉग की भी चर्चा नहीं की, पर मैं स्वयं बहुत कन्फ्युज्ड था।''[14]

यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि 'लिबिडो' का दमन करने पर यह एक विकार का रूप ले लेती है। 'पत्ताखोर' उपन्यास में हरिया नामक रिक्शा चालक, जो पैंतीस साल तक शादी न होने पर अपनी 'लिबिडो' का दमन कर रहा था, लेकिन अब लिबिडो के प्रवाह से असहाय हो रहा था। उसका व्यवहार बदल गया था– "जनाना सवारियाँ अब उसे और मीठी लगने लगी थीं। वह उन्हें एकटक घूरते लगता। उनसे मानसिक सेक्स स्थापित कर उनसे सटने की चेष्टा करता। कई बार सेक्स चिन्तन करते हुए कम पैसों में भी उन्हें बिठा लेता।'' प्रसंगवश ऑडिपस ग्रंथि में पुत्र का माँ के प्रति आकर्षण होता है। शुरू में स्वकेन्द्रित लिबिडो का प्रवाह विपरीत लिंगों की तरफ हो जाता है। पुत्र माँ को केवल अपने पर ही केन्द्रित होते देखना चाहता है और जब ऐसा किसी कारणवश
नहीं हो पाता, तो वह परायेपन का शिकार हो जाता है। इस तरह के परायेपन को अभिव्यक्ति 'पत्ताखोर' उपन्यास में मिलती है। उपन्यास में माँ का बेटे आदित्य के प्रति प्रेमविहीन व्यवहार उसे नशे की अंधी गलियों में धकेलकर बर्बाद कर देता

है। पति का माँ के प्रति प्रेम देखकर वह चीखती है–''बस करो, तबसे माँ–माँ की रट लगाए जा रहे हो... इसे ही कहते हैं इडिपस कॉम्प्लेक्स और चाहते हो कि मैं भी अपने बेटे को वैसा ही बना दूँ ...यूँ भी मुझे तो वह तुम्हारी ही कार्बन कॉपी नजर आता है।''[16]

बांग्ला की प्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी की सशक्त लेखनी उनकी लेखन कर्म की प्रतिबद्धता को उजागर करती है। उनकी रचनाओं में उनके अनुभवों को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ देखा जा सकता है। अपने 'दुष्कर' (2010) उपन्यास में लेखिका ने 'पूवाली' नामक पात्र द्वारा एक स्त्री को अभावग्रस्तता, विवशता और संघर्षरत अस्तित्व की कथा कही है। उपन्यास में पूवाली पर सुशील अपना अधिकार जमाता है और उससे शादी भी नहीं करता। वह दादागिरी करनेवाला स्वार्थी इंसान है। पूवाली थक–हारकर अपनी सहेली अमिता के पास कलकत्ता जाती है और वहाँ सत्येश का उसके जीवन में प्रवेश होता है। पूवाली और सत्येश की मुलाकातें प्रेम में बदल जाती हैं। सत्येश बताता है कि वह जीवन से निराश हो चुका था। उसकी पागल पत्नी का इसी शहर के अस्पताल में इलाज चल रहा है। पूवाली सत्येश को संघर्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है और स्वयं भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में निकल पड़ती है। उपन्यास में सत्येश दुश्चिन्ता से ग्रस्त होकर स्वयं को अजनबी पाता हुआ कहता है– ''ट्रेन की तरह तुम भी फरार हो गई हो ... मुझसे काफी दूर चली गई हो। अपनी अस्थिर आकांक्षा, अपने उन्मत्त अंधे प्रेम के साथ में अकेला हूँ। निपट अकेला।''[17] यहाँ भी हमारा हार्नी के दुश्चिन्ता सिद्धान्त से सीधा साक्षात्कार होता है, जिसमें सत्येश असहायता
के भाव से ग्रस्त दिखाई देता है।

महाश्वेता देवी के एक अन्य उपन्यास 'गोह' (2010) में एक तनावग्रस्त और कुंठित बच्चे की कथा है। वह अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को तलाशता रहता है। उसकी माँ रंजा बेटे के स्वभाव की संवेदनशीलता, बेरुखी और तनावग्रस्तता को देखकर हैरान रहती है। लेकिन माँ और पिता के पास अपने बेटे के लिए पल भर
भी साथ बिताने के लिए समय नहीं है। माँ–बाप की उपेक्षा के कारण उनका बेटा काल्पनिक दुनिया बसाने को विवश है। उपन्यासकार लिखती हैं–''गोह ने तय किया वह बड़े लोगों का भरोसा बिल्कुल नहीं करेगा। अब वह अपने आप बड़ा हो जाएगा कल वे लोग टॉनिक देना भूल गए, गुडनाइट तक नहीं कहा।''[18] गोह के बारे में अभि कहता है–''तुम लोगों का बेटा बिल्कुल अलग तरह का है, बिल्कुल अन्तर्मुखी। सेंस्टिव! इसके अलावा काफी परिपक्व भी है। ऐसे बच्चों को काफी सूझ–बूझ के साथ हैंडल करना चाहिए।''[19]

मैत्रेयी पुष्पा एक ऐसी उपन्यासकार हैं, जिन्होंने मानवीय जीवन, समाज एवं राजनीति के सभी पक्षों को बड़ी बारीकी से देखा, परखा और पहचाना है। उनका 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास पुलिस थानों के भीतर हो रहे बलात्कार, ज्यादतियों और अपराधों के कारण आज की नारी के सूनेपन, मानसिक तनाव एवं भ्रष्ट व्यवस्था का जीवंत चित्रण किया है। उपन्यास में 'इला' नामक महिला पुलिसकर्मी वह भी दरिंदों से भरे थाने की मूकदर्शक बनने को विवश है। वह अपने स्त्री अस्तित्व को अर्थ देने और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का हौसला लेकर पुलिस में भर्ती होती है। उसके सामने रोज दर्दनाक और खौफनाक घटनाएँ घटती हैं। वह अपनी सहेली समीना तथा गिरफ्तार की गई रेशमी नाम की वेश्या की भयावह कहानी सुनकर संत्रस्त हो उठती है। विद्रोहिणी और आक्रोशी शीतल स्वार्थी पति और हत्यारे सास–ससुर को मारकर जेल पहुँचती है। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने आई सुषमा का बलात्कार होता है। शारदा अपने ही पुत्र की हत्या इसलिए करती है कि उसने दूसरे पति से पैदा हुई उसकी बेटी के साथ लगातार बलात्कार किया। पूरे उपन्यास में चिंताजनक एवं भय की स्थिति फैली हुई है।

फ्रायड के अनुसार पुत्री माँ से प्रेम में निराश होकर पिता पर आकर्षित होती है। माँ उसके लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा यह मानसिक स्तर अधिक जटिल होता है। इस प्रकार पुत्री को पिता के प्रति प्रेम–प्रवृत्ति तथा उससे विवाह करने की इच्छा माता के प्रति घृणा के भाव एवं उसको मारने की कामना को 'इलैक्ट्रा ग्रंथि' कहा जाता है। लेकिन पिता की उपेक्षा पुत्री को पराएपन एवं शून्यता की गर्त में धकेल देती है। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों में हो रहे घोर विघटन के कारण पिता–पुत्री का संबंध भी कलंकित होता जा रहा है। उपन्यास में वेश्या रेशमी पुलिस कर्मी इला को बताती है कि जिस पिता को वह इतना स्नेह करती थी, उसी ने अपनी वासना का शिकार बनाकर उसे वेश्या बना डाला। रेशमी अपने संत्रास बोध को व्यक्त करती हुई इला से कहती है–''जिस तेजी से उन्होंने मेरी कुर्ती फाड़ दी और सलवार का नाड़ा तोड़ दिया, वैसी चुस्ती–फुर्ती तो आज तक न मेरे किसी ग्राहक ने दिखाई और न पुलिसवालों ने।''[20]

निष्कर्षतः महानगरीय बोध से उपजी यांत्रिकता, विज्ञान को प्रगति और प्रौद्योगिकी के अतिविस्तार, मानवीय मूल्यों के पतन, सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक रूपान्तरण, संवेदनशून्यता, वैयक्तिक विघटन आदि ऐसे घटक हैं, जो व्यक्ति के मन को कई रूपों में और अनेक स्तरों पर प्रभावित करते हैं। आज का मानव मानसिक परेशानियों का संग्रहालय है। परिवार एवं समाज में वह अपना स्वस्थ एवं स्वच्छ समायोजन नहीं कर पा रहा है। समय के बदलने के साथ मनोवैज्ञानिक स्थितियों में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। ऐसा लगता है कि अबतक को मनोवैज्ञानिक धारणाओं पर पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकन जरूरी हो गया है। स्वस्थ और स्वतंत्र मन से ही उत्तम विचार उत्पन्न होंगे, जो समाज और देश को मानसिक रूप से नीरोग बना सकेंगे। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी ही जमीन पर खड़े होकर अपने वजूद एवं इसकी सार्थकता को समझें। मानव मनोविज्ञान मनुष्य को मानसिक शांति नहीं दे सकता, इसकी प्राप्ति तो अध्यात्म–ज्ञान से ही संभव है।

संदर्भ–

1. पुष्पपाल सिंह, 'भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 86
2. कृष्णा सोबती 'समय सरगम', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 214
3. वही, पृ. 106
4. मृणाल पाण्डे, 'रास्तों पर भटकते हुए', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 148
5. वही, पृ. 45.
6. अलका सरावगी, 'शेष कादंबरी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 198
7. कुसुम अंसल, 'तापसी', राजपाल एंड सन्जु, दिल्ली, 2003, पृ. 216
8. वही, पृ. 215 9. वही, पृ. 178
10. मृणाल पाण्डे, 'अपनी गवाही', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 167
11. मधु कांकरिया, 'पत्ताखोर', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, फलैप पृ. 1
12. वही, पृ. 211, 13. वही, पृ. 88
14. वही, पृ. 15 15. वही, पृ. 169
16. वही, पृ. 20
17. महाश्वेता देवी, 'दुष्कर', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 107
18. वही, 'गोह', पृ. 17 19. वही, पृ. 11
20. मैत्रेयी पुष्पा, 'गुनाह बेगुनाह', राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 26

समीक्षा

सदी का सच : लघुकथा संसार

जीतेन्द्र कुमार
आरा– 802301
(मो नं–17979011585)

हिंदी कथा–संसार में लघुकथा विधा दिनोंदिन लोकप्रिय होती जा रही है। लगभग सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में लघुकथाओं को पर्याप्त स्पेस मिलते रहा है और पाठक भी पत्रिकाएँ खोलते ही लंबी–लंबी कहानियों और निबंधों को छोड़कर कविताओं और लघुकथाओं की ओर पहले आकृष्ट होते हैं। हिंदी कथा–साहित्य में लघुकथा विधा को हाशिए पर ढकेलने के सारे प्रयास निष्फल
हुए हैं। लघुकथाकार लगातार अपनी सृजनशीलता से पाठकों को प्रभावित कर रहे हैं। कारण है वे जिंदगी के सुलगते सवालों को लघुकथा का विषय बना रहे हैं, जिससे पाठक की आत्मा नैतिक और सांस्कृतिक रूप से कम समय में समृद्ध होती है।

भगवती प्रसाद द्विवेदी पिछले चार दशकों से कहानी, कविता, नवगीत, बाल–गीत, बालकथा, व्यंग्य, उपन्यास, निबंध, विनिबंध, आलोचना, लोककथा–संग्रह सहित लघुकथा विधा में सृजनशील हैं। 'सदी का सच' उनका तीसरा लघुकथा–संग्रह है, जिसमें उनकी एक सौ पन्द्रह लघुकथाएँ संकलित हैं। उनका पहला लघुकथा–संग्रह 'भविष्य का वर्तमान' सन् 1981 में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उनकी 74 लघुकथाएँ संकलित हैं। उसकी उस समय अच्छी चर्चा हुई थी। तब उनकी उम्र मात्र 26 वर्ष थी। इसके बाद 'थाती' लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी पचपन लघुकथाएँ थी। लघुकथा विधा में द्विवेदी जी ने प्रचुर और गंभीर
लेखन किया है।

लघुकथा के विषय में प्रो. श्यामनंदन शास्त्री 'राजहंस' कहते हैं कि 'लघुकथा' जिन्दगी की एक बेहद सावधानी से तराशी गई खूबसूरत फाँक की तरह होती है। अप्रत्याशित रूप से वह झटके से शुरू होती है और झटके से ही उसका अंत होता है। कलेवर की दृष्टि से लघुकथा छोटी से छोटी और एक डेढ़ पृष्ठों तक की भी हो सकती है। उसका शीर्षक साभिप्राय होता है और उसके केन्द्रीय भाव पर आलोक फेंकनेवाला होता है।

'सदी का सच' में लघुकथाकार भगवती प्रसाद द्विवेदी ने भूमिका के रूप में आठ पृष्ठों में महत्त्वपूर्ण आलेख लिखा है– 'लघुकथा परम्परा और प्रासंगिकता।' लघुकथा के इतिहास, उसकी उत्पत्ति और उसके विकास पर उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है। यह आलेख पाठकों और शोधार्थियों के लिए सहायक एवं सदुपयोगी है। द्विवेदी जी लघुकथा की उत्पत्ति वेदों और पुराणों तक तलाशते हैं। वे पंचतंत्र की कथाओं को लघुकथा के इतिहास और विकास का प्रथम सोपान मानते हैं। इस शोधपूर्ण आलेख में वे प्रतिपादित करते हैं कि सन् 1802 ई. में 'हिन्दी स्टोरी ट्रेलर' नामक ग्रंथ की रचना जे,बी, गिलक्राइस्ट के द्वारा की गई, जिसमें 108 लघुकथाएँ संकलित हैं और जिसे लघुकथा का आदि–ग्रंथ माना जा सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी में कहानी की अपेक्षा लघुकथा का इतिहास पुराना है। वरिष्ठ आलोचक मधुरेश हिन्दी में माधव राव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं और भगवान दास की 'प्लेग की चुड़ैल' (1902) को हिंदी की दूसरी कहानी। कुछ लोग मुंशी इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' (1808) को हिन्दी की पहली कहानी बताना चाहते हैं। लेकिन आलोचक मधुरेश कहते हैं कि वह अपनी रचनावस्तु और संवेदना में मध्यकालीन काव्य का गद्य रूपांतर लगती है।

द्विवेदी जी अपने लेख में 'लघुकथा' के विकास की आधुनिक राह तलाशते हुए 'सरस्वती' में सन् 1915 में छपी 'विमाता' को आधुनिक हिंदी की पहली लघुकथा कहते हैं। वे लघुकथा के औचित्य पर सबल विमर्श रचते हैं। वे लघुकथा और चुटकुला में अंतर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''लघुकथा में कथा–तत्त्व आवश्यक है, जबकि चुटकुले में यह अनिवार्य नहीं।'' वे आगे कहते हैं कि ''लघुकथा एकाधिक घटनाओं का निचोड़ होती है, जबकि चुटकुला घटनाहीन निचोड़ भी हो सकता है।''

यह सही है कि लघुकथा विधा–''सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा नैतिक अवमूल्यन के इस युग में फालतू लाग–लपेट के बिना कम–से–कम शब्दों में अधिक–से–अधिक मानवीय संवेदना की धारदार बात कहने में सक्षम है।''

कथावस्तु और संवेदना के लिहाज से देखें तो द्विवेदी जी की लघुकथाएँ सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के सबसे निचले सोपान पर खड़े इंसान के संकटापन्न जीवन की त्रासद स्थितियों के प्रति मानवीय संवेदना रचती हैं। उनकी लघुकथाएँ इंसान को इंसान के रूप में देखती हैं, साम्प्रदायिक या धार्मिक या जातिवादी खाँचों में वर्गीकृत नहीं करती हैं। उनकी लघुकथाओं की अन्तर्वस्तुओं में समानता, सामाजिक–आर्थिक न्याय और लोकतांत्रिक आस्था का भावबोध है। वैश्विक स्तर पर उसी शोषित, दमित और उत्पीड़ित है। उनकी अनेक लोककथाएँ स्त्री के प्रति ज्ञानात्मक संवेदना का रचाव करती हैं और इसलिए उनमें समकालीन संवेदना है।

द्विवेदी जी अपनी लघुकथाओं में नारी प्रश्नों पर समग्रता में जूझते हैं। नारी–प्रश्नों के कई आयाम हैं। वे गरीबी की शिकार हैं, कहीं वे लिंगभेद की शिकार हैं, कहीं वे बेरोजगारी की शिकार
हैं, घरेलू हिंसा, यौन आक्रमण तथा बलात्कार की शिकार हैं। घर–बाहर स्त्रियाँ–बालिकाएँ हिंसक परिवेश में जीने को अभिशप्त हैं। लघुकथाओं के माध्यम से वे स्त्रियों के प्रति व्यापक सम्मान और संवेदना का सृजन करते हैं। स्त्री जीवन प्रसंगों से संबंधित उनकी उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं–आबरू, थरथराते हुए, इडेन एक्सप्रेस, सिलसिला, अन्तर, गर्व, लूट–दर–लूट, जिजीविषा के स्वर, अबला, पीढ़ी–दर–पीढ़ी, काँच का महल, जीवित होने का दुःख, तालमेल, इज्जत, महिमा, एहसान, एक और बलात्कार। घटनाओं, चरित्र और संवाद के रसायन से एक छोटी कथानक का वे सृजन करते हैं। लघुकथा, कहानी, उपन्यास और नाटक गतिशील साहित्य है। जैसे ही पाठक को कथावस्तु का सूत्र पकड़ में आता है, उसका गतिशील विवेक मस्तिष्क में कथावस्तु के फाँक को स्वतः भरने लगता है और वह रचना के कथ्य को आत्मसात कर लेता है। रचना के उद्देश्य से वह भावात्मक रूप से जुड़ जाता है और रचना की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। 'एहसान' की बँगले वाली मैडम और 'एक और बलात्कार' की सुनयना के संस्कार और संवेदना में जमीन–आसमान का फर्क है। बंगलेवाली मैडम रिक्शेवाले के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के बदले हड्डी–पसली तुड़वाने की धमकी देती है, जिसने उनके नशे शरीर को ढकने के लिए अपने कमर की लुंगी सौंप दी थी और जिन्हें अपने

रिक्शे पर सुरक्षित बँगले तक पहुँचाया। मैडम का वर्गीय अहंकार और कृतघ्नता देखते बनती है। दूसरी ओर लाचार बीमार सुनयना की त्रासदी है, जो उस पति को परमेश्वर मानकर उसकी चरणधूलि अपनी माँग में लगाती है, जो उसकी बीमारी का इलाज नहीं कराता, बल्कि यथाशीघ्र उसके मर जाने की प्रतीक्षा करता है। इस कहानी का चरमोत्कर्ष तब है, जब पति बीमार पत्नी से दैहिक संबंध बनाता है! दाम्पत्य–जीवन का यह त्रासद अंतर्विरोध है। उसका कथानक आत्मा को हिलाकर रख देता है। द्विवेदी जी स्त्री–जीवन के अनेक प्रसंगों के माध्यम से चेतना सम्पन्न नारियों के साथ समय और परिस्थितियों से विद्ध स्त्री चरित्रों को अपनी रचना में स्पेस देते हैं। 'आबरू' की धनेश बह पति के खिलाफ लिये गये पंचायत के फैसले से सहमति जताने से इंकार कर देती है। 'थरथराते हुए' की वेश्या शकीला सच्चे प्रेमी धनेश को छलने से इंकार कर देती

है। 'सिलसिला' की लैला छद्म प्रेमजाल में पड़कर गंगा में डूब मरने के लिए विवश होती है। वेश्यावृत्ति में फँसी स्त्री सामाजिक यथार्थ से अवगत है और उसे अपने सेक्स–वर्कर होने में शर्म नहीं, गर्व है।

द्विवेजी जी प्रशासन की विसंगति को लघुकथा का विषय बनाते हैं। पुलिस और थाना का कार्य शांति और कानून का शासन स्थापित करना है। उसका काम आम आदमी को सुरक्षा प्रदान करना है, लेकिन पुलिस की ज्यादती और दुश्चरित्रता जगगाहिर है। पुलिस कर्तव्यहीनता और संवेदनहीनता की प्रतीक है। पुलिस के इस चरित्र को 'लूट–दर–लूट', 'गुली–डंडे का खेल', 'जिजीविषा के स्वर', 'कुसूर', 'इज्जत' आदि लघुकथा में चित्रित किया गया है।

समाज में जो आर्थिक खाई है, वो तो चौड़ी होती जा रही है। इसका एक और भारतीय आयाम है, दलित और अछूत समझे जाने का। उच्च वर्ण के लोगों की मानसिकता में संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार परिवर्तन नहीं आया। साहित्य अपना फर्ज निभाने को तैयार है। द्विवेदी जी की लघुकथाएँ इस सामाजिक विसंगति को अपनी रचनावस्तु बनाती हैं और समाज को आईना दिखाती हैं कि देखो इसमें अपना असली चेहरा। इस संदर्भ में 'इंसाफ', 'अछूतोद्धार', 'तरकीब', 'खलल', 'बदबू' उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं।

बेरोजगारी एक ज्वलंत मुद्दा है। इस समस्या को द्विवेदी जी की कई लघुकथाओं में उजागर किया गया है। जैसे 'वापसी' 'अवमूल्यन', 'उम्मीद की परवरिश' इसी प्रकार राजनेताओं और नौकरशाहों के दोहरे चरित्र और भ्रष्टाचार और संवेदनहीनता को 'वीआईपी', 'मानसिकता', 'दूरियाँ', 'उपयोगिता', 'कायापलट',

'प्रजातंत्र', 'अपराधी कौन', 'भविष्य का वर्तमान', 'मुखौटे', 'आदेश', 'संबंध', 'सर की जीत' लघुकथाओं में उजागर किया गया है।

इसके अतिरिक्त अवसरवादी, बाजारु, सेक्स पीड़ित लेखकों के चरित्र पर तीखी चोट करती लघुकथाएँ हैं। 'करंट' में कामशास्त्र पत्रिका के संपादक भूचाल जी का चरित्र दिलचस्प है। 'ट्रेंड' के लेखक राजनीतिक ट्रेंड देखकर पिछड़ावादी लेखक बने हैं। 'विरोधाभास' के सतीश जी के जीवन और लेखन में बहुत फर्क है। 'हत्यारा' के कथाकार सड़क पर समान्तर कहानी के लिए घटना तत्त्व खोज रहे हैं। वे घायल आदमी का साक्षात्कार करते हैं और उसे मरने देते हैं, जिससे कि उन्हें एक समान्तर कहानी लिखने का सुख मिले। इन सबों के बीच सच्चे लेखक का दर्द है कि वह ढिबरी जलाकर साहित्य सृजन करने से उसको समाज उचित सम्मान नहीं देता (पीडा)।

भगवती प्रसाद द्विवेदी की रचना भाषा हिंदुस्तानी है। वे शुद्धतावादी नहीं है। जिस शब्दावली और भाषा को आम–अवाम ने जेहन में आत्मसात कर लिया है, उसी भाषा को वे साहित्य–सृजन में बरतते हैं। इसलिए उनकी भाषा सहज और संप्रेषणीय है।

———

कविता

बुधिया

नेतलाल यादव
चरघरा नावाडीह,
जमुआ, गिरिडीह (झारखंड)

एक गाँव के अंतिम छोर पर
मिट्टी के घर में रहती थी बुधिया
फूल–सी बेटियों के साथ
जो पंखुड़ियों में थी
दर्द के आँसू को पीकर
फटे कपड़े को सीकर
बदनसीबी को पाकर
बासी भोजन खाकर
चुनौतियों से लड़ती थी बुधिया
एक दिन पड़ गई बीमार
देखते ही देखते गंदगियों से
भर गया उसका घर–द्वार
तब घर की देहरी पर बैठकर
डॉक्टर को दिखाई
जो मोहल्ले में आते थे
जिनसे लोग इलाज कराते थे
बहुत गंभीर होकर
करते थे इलाज
जिनपर गाँव वालों को
बहुत था नाज
उन्होंने आज बुधिया को
अपने झोले से दी दवाई
खाने के तरीके समझाए
जैसे क्लास में बच्चों को
मोहन गुरुजी समझाते थे
डॉक्टर साहब ने कहा था
बुधिया समय–समय पर
दवाई लेते ही रहना
दिन में दो–दो ढक्कन
पर ढक्कन काम मतलब
कहाँ जानती थी बुधिया
उसने कभी स्कूल नहीं देखा था
कभी स्लेट नहीं छुई थी
और ना ही कोई चॉक
तभी तो ढक्कन का अर्थ
नहीं लगा पाई
हो गई बड़ी भूल उससे
ढक्कन का मतलब
घर का कटोरा समझ बैठी
पी गई बोतल की सारी दवाई
किसी तरह मरते–मरते
बच गई थी बुधिया
अनपढ़ जिंदगी बेकार लगी थी
इस घटना से वह जगी थी
दाखिला कराई थी अपने बच्चों को
कस्तूरबा विद्यालय में
उनकी लड़कियाँ अब पढ़ रही है
दो कदम आगे बढ़ रही है
बेटियों के कहने पर
घर में शौचालय बनवाया है
इस तरह बेवा बुधिया ने
जबरदस्त परिवर्तन लाया है
सबकी नजरों में आज उसने
अपनी इज्जत बनायी है
गरीबी लचारी और बेबसी में भी
बेटियों को पढ़ायी है।

समीक्षा

चेहरा दर चेहरा

दयानंद जायसवाल
9931240303

डॉ. प्रेमचन्द पाण्डेय, भागलपुर, बिहार द्वारा रचित ग़ज़ल संग्रह में सचाई की शिष्टता और नये अंदाज की बेताबी है। 'चेहरा दर चेहरा' मानव संवेदनाओं एवं चेतना को जागृत करने वाली इनकी ग़ज़लों ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिसने मानवतावादी चिन्तन को विशिष्ट स्थान पर रखा है। आज यह हिन्दी साहित्य की एक सशक्त और अत्यन्त लोकप्रिय काव्य विधा
है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी काव्य में अनेक आन्दोलन एवं बाद आये और चले गये, किन्तु गीतात्मक काव्य में आज नवगीत के अतिरिक्त केवल ग़ज़ल ही एक विशिष्ट तेवर के साथ हिन्दी में प्रचलित है। इसकी शुरूआत लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पहले अरबी भाषा में हुई थी। अरबी में ग़ज़ल कोई स्वतन्त्र काव्य विधा नहीं थी। वहाँ मुख्य रूप से कसीदे राजाओं की प्रशंसा में लिखे जाते थे। कसीदे में शायर अपने प्रशंसात्मक शेरों के बीच में कुछ शेर ऐसे भी डाल देते थे, जो प्रशंसा के विषय से हटकर प्रेम सौन्दर्य, शराब, शवाब और मुख्य रूप से इश्क–मोहब्बत आदि से सम्बन्धित होते थे। निस्संदेह आज हिन्दी ग़ज़ल ने काव्य को नयी भावभूमि एवं नवीन तेवर प्रदान किये है और वह दरबारों से निकलकर जनमानस का कंठहार बन गई है।

दुष्यन्त कुमार की मान्यता है कि ग़ज़लों की भूमिका की जरूरत नहीं होनी चाहिए, उर्दू और हिन्दी अपने–अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती है, तो उसमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। कुँअर बेचैन लिखते हैं कि ''ग़ज़ल रेगिस्तान के प्यासे होठों पर उतरती हुई शीतल तरंग की उमंग है। ग़ज़ल घने अंधकार में टहलती हुई चिंगारी है। ग़ज़ल नींद से पहले का सपना है। ग़ज़ल जागरण के बाद का उल्लास है। ग़ज़ल गुलाबी पाँखुरी के मंच पर बैठी हुई खुशबू का मौन स्पर्श है।'' अब्दुल विस्मिल्लाह के अनुसार–''ग़ज़ल अब अपने शाब्दिक अर्थ से बाहर आ गई है और यह एक ऐसी काव्य विधा बन गई है, जिसमें जीवन के विविध पहलुओं की अभिव्यक्ति हो रही है।''

आज इस बदलते दौर के चलन से ग़ज़लकार डॉ. पाण्डेय प्रेम की तीव्रता को जितनी गहराई से महसूस करते हैं, उसी तीव्रता से समाज के विभिन्न आयामों की गुदगुदाती चर्चाएँ भी पाठकों तक पहुँचाने में सफल होते हैं। इन्होंने 'चेहरा दर चेहरा' नामक इस ग़ज़ल–संग्रह में आहत भी हुए हैं, जो ग़ज़लों में बखूबी
दिखाई देती है। इंसानियत का खून, हद दर्जे के स्वार्थ, झूठ और फरेब की इस दुनिया में उनका दिल किस कदर परेशान है। वे चाहते हैं कि इस दिखावे भरी दुनिया में लोगों को सिर्फ बाहरी रोशनी और शोर–शराबे में ही नहीं खो जाना चाहिए, बल्कि अपने भीतर भी एक नजर रखनी चाहिए। किसी ने खूब कहा है– 'मुस्कुराहट चेहरे का नूर' है। पर हकीकत यह है कि अक्सर तबस्सुम भी एक पर्दा होती है, किन्तु उसी में कभी दर्द, कभी गुस्से और खीझ, कभी बेचैनी या कभी छल–छद्म को छुपाने की भिन्नता 'चेहरा दर चेहरा' होने लगे हैं। ग़ज़लकार पूरी तरह से बेखौफ होकर अपने पाठकों के साथ संवाद करते हैं–

''नफरतों का घोर अँधेरा जहाँ पसरा वहाँ
चाँद सूरज भी मिटा पाते नहीं तारीकियाँ।

आदमी से भी अधिक रखते परिंदे हैं समझ
बैठ मन्दिर और मस्जिद पर मिटाते दूरियाँ।''

इनकी नज़र देश के क्रूर होते राजनीतिक हालात, समाज के पतन, खोखली होती सामाजिक संवेदनाओं पर है और ठीक इसी समय वह संवेदनशीलता के मुलायम अहसास से भी भींगा हुआ है–

''प्यार पर ही है टिका संसार यह
बस यही सच्ची खुशी का राज है।

सुर निकलता ही नहीं जब प्यार का
मानिए बेकार ही वह साज है।''

महत्त्वपूर्ण बात यह कि पर्यावरण से इनके सरोकार इतने जमीनी हैं कि ये कुदरत से भी संगत करते हैं और बहुत कुछ सोच–विचार कर चमत्कारी बातों की भी सृष्टि करते हैं, जो अपने
चुटीलेपन और मारक प्रभावशीलता में अधिक असरदार बनाती है–

''क्या बनेगी नदी वो समुंदर भला
जब रहे फासला खुद बनाए हुए।''

इनकी ग़ज़लों में एक अपनापन है, जीवन यथार्थ की बारीकियाँ हैं, बदलते युग के प्रतिमान एवं विसंगतियाँ हैं, सहज सौंदर्य भी समाहित है तथा समय और समाज की तमाम छोटी–बड़ी घटनाओं को भी ध्यान में रखते हैं। 'चेहरा दर चेहरा' व्यक्ति बदल रहे हैं, समय बदल रहा है, संस्कृति बदल रही है। फिर भी इन तमाम परेशानियों और समाज में बढ़ते एकाकीपन के बाद भी ग़ज़लकार इंसान में संघर्ष के जज्बे को जलाए रखने में यकीन रखते हैं। उनका कहना है कि सच कहने के लिए जरूरी नहीं कि आपके पीछे हजारों लोग खड़े हों। सच अकेला ही पर्याप्त होता है।

''प्यार से बढ़कर भला ताकत जमाने में कहाँ
प्यार को होती जरूरत कब कहाँ तलवार की।
जो लहर से ही डरा सहमा किनारे पर खड़ा
क्यों करेगा बोलिए तो बात वो मझधार की।''

जाहिर है दुष्यंत का ध्यान गरीबी, भ्रष्टाचारी, बेकसी और आम लोगों की चिंताओं की तरफ था। उनकी रचनाओं के इस तेवर ने ग़ज़ल का एक मार्ग प्रशस्त किया और हिंदी में ग़ज़ल इश्क–हुस्न से बचकर सर्वहारा वर्ग की फिक्र करने लगी, जिसका निर्वाह आने वाली बाद की पीढ़ी के रचनाकारों ने किया। आज समाज का हर दुख–दर्द इन ग़ज़लकारों के दायरे में आ गया। तब ग़ज़लें संवेदनात्मक स्तर पर उस बड़ी आबादी से जुड़ गई, जिसके पास पहनने के कपड़े, खाने के दाने और रहने को घर नहीं है। ग़ज़ल ने विरोध का रुख अख्तियार किया। इनके तेवर तल्ख़ हुए। सत्ता की निरंकुशता के खिलाफ आवाज उठने लगी।

''हमारी पीठ पर चुपके जो कल खंजर चलाया है
हिमाकत देखिए वो सामने आ मुस्कराया है

लगा इल्जाम कल झूठा गया जो तोड़कर रिश्ता
नए रिश्ते की करने बात क्यों फिर आज आया है।''

जिस कारण दुष्यंत कुमार को हिंदी ग़ज़ल का एक प्रकाश स्तम्भ माना जाता है, किंतु उसी कारण आज अनेक ग़ज़लकारों ने भी प्रभावशाली तरीके से उसी तेवर में शेर कह रहे हैं। डॉ. प्रेमचंद पाण्डेय जी की भी ग़ज़लें उसी आँच और धुएँ की तपिश का फल है कि आज इन्हें ग़ज़लकारों में सम्मानित किया जाता है। इसलिए कि

'अदम गोंडवी' साहब फरमाते हैं–इन्होंने भी समाज के हर उतार–चढ़ाव पर नजर रखा है। जहाँ मनुष्य की संवेदना खेलने की कोशिश

करती है, वहाँ इनकी ग़ज़लें पूरी ताकत से विरोध दर्ज करती हैं। मनुष्य को प्रेम, उल्लास और सुकून से जीने देने की हिमायत करती हैं। आज की लुप्त होती मानवीय संवेदना और बाजारवाद का विस्तार न जाने इनके कितने शेरों में है। हर शोषण, कुंठा, भय और निराशा के खिलाफ इनके शेर मुखर होते हैं। आदम गोंडवी साहब फरमाते हैं–

''ग़ज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नजारों में
मुसलसल फ़न का दम घुटता है इन अदबी इदारों में।''

इन्होंने भी गुम होती बस्तियों पर करारा व्यंग्य किया है और चकाचौंध से गाँव की ओर लौटने की बात कही है। क्योंकि जब भी गाँव की बात चलती है, तो एक सुकून भरे शांत, सहज, सादगीपूर्ण वातावरण का आभास मन में उभर जाता
है। हरे–भरे खेत, हल जोतते किसान, मवेशियों के गले में टुनकती घंटी , चौपाल पर हुक्के की गुड़गुड़ में बतियाते बुजुर्गों के दृश्य उभर जाते हैं। खेत–खलिहानों में रागिनियाँ गाते किसान, हौले– हौले चलती बैलगाड़ियाँ, पनघट पर पानी भरती महिलाएँ–ये सभी दृश्य अनायास ही हमारे दृष्टिपटल पर अंकित हो जाते थे, वो गाँव की चौपालें अब फीकी पड़ने लगीं। आधुनिकता का प्रभाव अब गाँवों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

''फाग चैता अब कहाँ झूमर व लोरी गाँव में
खोजते फिल्मी तरानों में सभी अब मस्तियाँ।''

ग़ज़ल विधा के प्रति समर्पित, चर्चित ग़ज़लकार पाण्डेय जी की लगन और रचनाशैली की कुशलता इनके ग़ज़ल–संग्रह में
देखने को मिलती है। ग़ज़ल की शिल्पगत या संरचनागत विशेषताओं में बहर (छंद) और मात्रा के अलावा रदीफ और काफिया (तुकान्त) के महत्त्व पर विशेष ध्यान रखा गया है। इन सबके सन्तुलन में इनकी ग़ज़लें पूर्णता को प्राप्त होती हैं। इसलिए मैं इनके लिए बधाई के साथ सफलता की उज्ज्वल कामना करता हूँ। धन्यवाद!

जिज्ञासा प्रकाशन, गाजियाबाद।
कवि डॉ. प्रेमचंद पांडेय का संपर्क सूत्र– 9199003205

कविताएँ

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण'
स्कीम नं. 51 इन्दौर (मप्र.) 452006,
मो.–9424044284

आषाढ़ी बरखा (लावणी छंद में)

आज बगीचे में बरखा की, बूँदों ने जब नृत्य किया
है संवेदनशील प्रकृति यह, इसी तथ्य को सत्य किया।

एक–एक पाँखुरी पुष्प की, नस–नस में मकरन्द लिये
सुरभित करने लगी धरा जब, मधुरिम–मंद सुगंध लिये।

गदराई डाली पर मद से सराबोर थी कली–कली
और इधर पसरी मादकता, झूम उठी तर गली–गली।

जब रति–पति रसराज झूमकर, तरकश बाणस टटोल उठा
बरखा खुद हो उठी बावरी, काम–काम रस घोल उठा।

कलियाँ अदा दिखा मुस्काईं, अँगड़ाकर रतिगान किया
फिर तो आवारा भँवरों ने, जी भरकर रस पान किया।

काले–काले मेघ गगन में, सघन और गतिमान हुए
चारों ओर धुन्ध सी छाई, घर–घर के मेहमान हुए।

गर्मी उमर धूल हौकन सब, दबी जीभ सी छिपी मिली।
इधर बिरहिणी आतप ताप से तपी मिली।

पानी ही पानी है

धरती से अम्बर तक, एक ही कहानी है
छाई पयोधर पै, कैसी जवानी है।

सूखे में पानी है, गीले में पानी है
आँख खोल देखो, तो पानी ही पानी है
पानी ही पानी है, पानी ही पानी है।

नदियों में नहरों में, सागर की लहरों में
नालों पनालों में, झीलों में तालों में
डाबर के डबरों में, अखबारी खबरों में
खेतों में खड्डों में, गली बीच गड्ढों में
अंजुरी में चुल्लू में, केरल में कुल्लू में।
कहीं बाढ़ आई है, कही बाढ़ आनी है
मठी डूब जानी है, बड़ी परेशानी है
सोचो तो पानी है, घन की निशानी है
जानी पहचानी है, यही जिंदगानी है
पानी ही पानी है, पानी ही पानी है।
हण्डों में भण्डों में, तीर्थ राज खण्डों में
कुओं और कुण्डों में, हाथी के झुण्डों में
गगरी गिलासों में, लोटा पचासों में
छागल सुराही में, किटली कटाही में
तसला तगारी में, बगिया में क्यारी में
बटुए तम्हाड़ी में, खाई में खाड़ी में
खारों में कछारों में, बरखा बहारों में
भूखे को पानी है, प्यासे को पानी है
ऊपर भी पानी है, नीचे भी पानी है
दाएँ भी पानी है, बाएँ भी पानी है
पानी ही पानी है, पानी ही पानी है
कूलों कुलावों में, नलों और नावों में
जलवों दुआओं में, हिलती हवाओं में
नल के नगीने में, चूते पसीने में
खाने में पीने में, मरने में जीने में
कीचड़ में दल–दल में, मँड़राते बादल में
तनों और शाखों में, बिरहिन की आँखों में
धरती से अम्बर तक, एक ही कहानी है
छाई पयोधर पै, कैसी जवानी है।
पानी से पानी है, पानी में पानी है
पानी ही जीवन है, जीवन ही पानी है
पानी ही पानी है, पानी ही पानी है।

समीक्षा

नाच रही है पृथ्वी

दयानंद जायसवाल
9931240303

'नाच रही है पृथ्वी' कविता संग्रह डॉ. अंजना वर्मा पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, नीतीश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार) द्वारा रचित कविताओं में अनुभूतियों और संवेदनाओं के संसार को और नारी जगत के प्रति कवयित्री के हृदय की सुंदर अभिलाषाओं को विषय वस्तु में समेटकर उसके जीवन की ऐसी अनेक अनकही विसंगतियों और वर्जनाओं को केंद्रित किया गया है, जिसमें नारी की कारुणिक व दर्दनाक स्थिति तथा नाजुक परिस्थिति चित्रित हैं।

डॉ. अंजना वर्मा वर्तमान रचना परिदृश्य में एक जानी– पहचानी कवयित्री, कथाकार एवं गीतकार हैं। इनकी अबतक इक्कीस मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें कविता, कहानी, गीत, दोहा, लोरी, वंदना, बाल–साहित्य, समीक्षा एवं यात्रावृत्त की पुस्तकें शामिल हैं। समकालीन हिंदी कविता में नारी को विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है। छायावादी युग में नारी को देवी, सहचरी, माँ, प्राण, पूजनीया, वन्दनीया का दर्जा प्राप्त था, वह धीरे–धीरे वैज्ञानिक प्रगति तथा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव के कारण विलुप्त होता गया। नारी के प्रति आदर्शवादी विचारधारा में परिवर्तन हुआ तथा यथार्थवादी, उपयोगितावादी और उपभोक्तावादी अवधारणा को बल मिला। श्रद्धा तथा आस्था की प्रतीक नारी त्यागमयी और कर्ममयी कर्तव्यपरायणा बन गई। इसका दूसरा पहलू भी सामने आया और वह भोग्या के रूप में, प्रेमिका के रूप में, प्रिया के रूप में, बलात्कार बेवशी आदि के रूपों में चित्रित की गई। सम्प्रति नारी को अबला, निरीह, लाचार आदि रूपों में देखा जा रहा है, जबकि आज नारी सामाजिक संगठन, प्रशासनिक सेवा, राजनेता, शिक्षा
तथा चिकित्सा सेवा आदि में भी स्थापित हो चुकी हैं। बावजूद इसके आज कवियों ने मूल्यों के क्षरण के इस परिवेश में मानवताहीन समाज की कटु भर्त्सना की है।

डॉ. अंजना वर्मा के इस कविता संग्रह में नारी जीवन को समग्रता में भोगने की लालसा, सम्पूर्णता की आग्रही, नव्य परिवेश की भावभूमि पर अधिष्ठित एवं प्रतिष्ठित करने के प्रति कविताएँ हैं। कवयित्री की दृष्टि में नारी जीवन आज भी विसंगतियों से भरा पड़ा है। सामाजिक, पारिवारिक दासता से वे आज भी मुक्त नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निराशा, हताशा और शोषित वह आज भी हो रही है। पत्नी जीवनसंगिनी नहीं, भोग्यवस्तु बनकर रह गई हैं, जबकि नारी इस सृष्टि का अनुपम वरदान है। इस सृष्टि में जो कुछ सुंदर है, तरल है, सरल है, उसमें नारी का ही योगदान है। अन्तर्ब्रह्म रूप से सौंदर्य सम्पन्न नारी के बिना विधाता का सृष्टिचक्र अधूरा है। इनकी ही पहली कविता 'माँ और माँ' में निहित है–

''माँ!
तुम ही लिखती थी हमारे दिन–रात
तुमसे ही सजते थे
हमारे सारे तीज–त्योहार
वर्ष के आरंभ से लेकर अंत तक
सालभर के सारे त्योहारों की रौनक
तुम्हीं से होती थी।''

जयशंकर प्रसाद की भी निम्न पंक्तियाँ सदैव ही स्त्री के महत्त्व और उनके सम्मानित स्थान को दर्शाती हैं–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत–सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।''

कवयित्री की दृष्टि में स्नेह, दया, करुणा, क्षमा, त्याग, समर्पण, ममता आदि गुणों की अजस्र धारा बनी नारी, जो सुख को विस्तृत कर किसी को भी दुःखी नहीं देखना चाहती, जो प्रेयसी, पत्नी और माता के रूप में पुरुष की शुष्कता को मिटाकर अपनी आर्द्र कृपा से सिंचित करती है, उस सर्वमंगलमयी, सर्वशक्तिमयी नारी को सृष्टि की अनुपम कृति आदि कहकर कभी उसकी अभ्यर्थना की गई है, तो कभी दुर्भाग्यपूर्ण, विडम्बनापूर्ण स्थिति में भी ला दी गई है। इनकी कविता 'श्रद्धा' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

''प्रेम विलुप्त हो गया है अब
इसलिए
अब कोई प्रेमी नहीं मिलता
प्रेमी के वेश में पिशाच मिल जाता है
तभी श्रद्धा के कितने टुकड़े हो जाते हैं
विश्वास की हत्या तो पहले ही हो चुकी थी।''

इस सच्चाई के लिए कोई सबूत तलाशने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती कि अधिकांश साहित्य पुरुषों द्वारा ही लिखा गया है। पुरुष प्रधान समाज में ऐसा होना कुदरती बात भी है। पुरुष द्वारा रचित साहित्य को पुरुष ने पुरुष की तरह ही पढ़ा है। यहाँ तक तो बात समझ में आती है, लेकिन स्त्री लेखन को भी उसने पुरुष की तरह पढ़ा है और स्त्री लेखन में उकेरित संवेदना की ओर ध्यान नहीं दिया। पुरुष सत्तात्मक समाज में जब स्त्री अपने देखे गये अनुभव और भोगे गये अनुभव को रचना में बाँधती है, तो उसे अपनी संवेदना से मिलते–जुलते प्रतिमान नहीं मिलते और वह मजबूरन पुरुष द्वारा सृजित प्रतिमानों पर प्रश्न चिह्न लगाती है और नए प्रतिमानों के लिए तर्क भी प्रस्तुत करती है। भारतीय साहित्य में सदियों से स्त्री की जो तस्वीर नजर आती है, वह गुलाम स्त्री की है। समय बदलने के साथ सामजिक संबंधों में भी परिवर्तन होते रहे और इसके साथ–साथ समाज में स्त्री की स्थिति भी बदलती रही। मानसिक छीलन पैदा करनेवाली बात यह है कि आर्यों के समय में उस हैसियत रखनेवाली स्त्री की प्रतिष्ठा को मनु, कबीर, तुलसीदास, गोरखनाथ, पीलू, वारिसशाह जैसे जिम्मेदार कवियों ने अपनी रचनाओं में धूमिल क्रिया है। इन्होंने स्त्री की महानता के बारे में बताया कि स्त्री के बिना पुरुष अधूरा है। ऋषि–मुनियों और राजा–महाराजाओं को जन्म देने वाली स्त्री ही है। समाज और समय को बदलती दशा का प्रभाव स्त्री दृष्टिकोण से देखना हो तो वह किसी स्त्री लेखनी में भलीभाँति देखा जा सकता है। पुरुषों की अवहेलना ही वजह है कि स्त्री लेखन स्त्री को जागृत करने के लिए अपनी कलम उठायी और अपनी आवाज को साहित्य का हिस्सा बना दिया।

इनकी भी एक अन्य कविता में उद्धरित है–

''जिन लोगों ने गरियाया औरतों को
उन सबको भी संसार में लाने वाली
स्त्री ही थी
पालने–पोसनेवाली वही थी
उसकी कोख में जन्म लेकर भी
उन्होंने यह नहीं सोचा कि
माया के तिनकों से ही

बनती है यह दुनिया
बनते हैं बसेरे
ककहरा के भी पहले
बच्चा बोलता है माँ।''

डॉ. वर्मा की रचनाओं में साहित्य के साथ स्त्री चेतना भी पनपती है। नारी के जीवन की वैयक्तिक स्थितियों और सामाजिक स्थितियों के दबाव में एक अलग दृष्टि और परिप्रेक्ष्य है। अन्याय की अन्याय के रूप में पहचान और उसका निर्भय होकर चित्रण करना इनकी विशेषता है। इनकी ही कविता 'हँसी के दुश्मन' की पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

''औरतें हँसना चाहती हैं
लेकिन उसकी हँसी के दुश्मन हैं हजारों
जैसे फूलों, चिड़ियों
और तितलियों के हुआ करते हैं
हर किसी का हाथ
उनकी ओर बढ़ने लगता है।''

कवयित्री की दृष्टि में समस्त जगत में स्त्री का संघर्ष लगभग समान ही है। फिर चाहे वह भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक, भाषिक या फिर उसकी स्मिता सम्बन्धी समस्याएँ ही क्यों न हो, सभी एक समान ही दृष्टिगोचर होती हैं। शुरूआत से ही स्त्रियों पर धर्म, जाति–कानून, रीति–रिवाजों के नाम पर बन्धन लगाये जाते रहे हैं। जब–जब मान–सम्मान की बात आई, तब–तब पुरुष वर्ग ने इन्हें केवल मन बहलाने की वस्तु मानकर इनकी अवहेलना की है। पांचाली, शैब्या या फिर सीता सभी ने कहीं–न– कहीं अपने स्त्री होने का कर्ज चुकाया ही है। इनकी ही एक कविता 'चुप रहना' से उद्धृत पक्तियाँ है–

"बोलना नहीं मुँह खोलना नहीं
दु:ख का पहाड़ टूटे तो
दबकर भी उसमें
चीखना नहीं
तुम स्त्री हो
यह याद रखना।''

एक ओर जहाँ हमारी भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की देवी स्वरूपा, गृहलक्ष्मी व पूज्या माना जाता है, तो दूसरी ओर उसी के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा तथा हेय भाव रखा जाता रहा है। जबकि प्रारंभ से स्त्रियों में सेवा–समर्पण का भाव स्वाभाविक रूप से देखा गया है, किंतु उनके इसी सेवा–समर्पण के भाव को उनकी कमजोरी व अयोग्यता मान लेना भी बिल्कुल गलत है। इनकी ही एक कविता 'सब कुछ हो सकता है' में इस प्रकार उद्धृत है–

''जब जरूरत हुई कुछ प्राप्त करने की
तो वह देवी बन गई
सेवा लेने के समय वह
दासी बना दी जाती है
कभी उसे सिर पर
ताज की तरह रख दिया जाता है
तो कभी जूती की तरह
पैरों में पहन लिया जाता है।''

इस कविता संग्रह में छोटी–बड़ी तिरसठ कविताएँ हैं, जो हमें स्त्री और पुरुष की स्वतंत्रता में सम्बन्धों का, पारिवारिक मूल्यों का, दाम्पत्य की मर्यादाओं का संदेश देती है। मानवीय अधिकारों में स्त्री और पुरुष समान है, किंतु फिर भी यथार्थ में एक असमानता और व्यवहार में विषमता है। कविताओं में नारी विमर्श के वर्तमान परिवेश के यथार्थ से उपजी संवेदनाओं का समावेश है और इनमें कवयित्री के अंतर्मन की हलचल, उसकी जीवन चेतना के कई आयामों को उद्घाटित करती है। कविता के जीवंत फलक पर समाज और संस्कृति के कई रंगों, अक्सों को उकेरती इन कविताओं में मन का स्पंदन समाया है। सहज और सरल भाषा शैली में लिखी डॉ. अंजना वर्मा की कविताएँ आम पाठकों के दिल को छू लेती हैं। स्त्री संवेदना के स्वर यहाँ मुखर है। कविता–संग्रह पठनीय है। कवयित्री को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं!

श्रीसाहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली–93
कवयित्री का संपर्क सूत्र– 9572991995

कविता :

सूर्यप्रकाश मिश्र,
खोजवा दुर्गाकुड, वाराणसी
मो.–9839888743

व्यापार

बिक गया बुधवा बिकी बेवा बदामी
हिरामन रो रहा है
जुट गये व्यापार में ढेरों इनामी
हिरामन रो रहा है
बन रहे जो खास इस बदली हवा में
उन्हें मीठा बोलने की लत नहीं है
लग गया है दाम पर सबको पता है
एक साड़ी वोट की कीमत नहीं है
चन्द दिन का राज फिर होगी गुलामी
हिरामन रो रहा है
समय पल भर भी नहीं ठिठका कभी भी
थक गई हर झोंपड़ी आवाज देकर
मुफलिसी ने दुश्मनी जी भर निभायी
पर कभी आया नहीं कोई सहोदर
आज है पुरजोर वादों की सुनामी
हिरामन रो रहा है
पेड़ पीपल का दुखी गुमसुम खड़ा है
हवा के झोकों से तिल–तिल झर रहा है
शिव बना पत्थर जिसे सब पूजते थे
बस पड़ा चुपचाप आहें भर रहा है
झूलता फटकर दुपट्टा रामनामी
हिरामन रो रहा है

समीक्षा

अगिनदेहा

दयानंद जायसवाल
9931240303

'अगिनदेहा' उपन्यास रंजनजी भागलपुर (बिहार) द्वारा लिखित एक साहित्य–रूप के स्वरूप में यह सामाजिक यथार्थ को, उसकी जटिलता और समग्रता को प्रकट करता है।

लेखक ने औपन्यासिक न्याय के संघर्ष में स्त्री की मुक्त आकांक्षा और अधिकार चेतना को शामिल करते हुए प्रगतिशीलता से अनुशासित निरीक्षण क्षमता के बूते पर यथार्थ के रूपों को हाई प्रोफाइल सोसाइटी के मानवीय परिदृश्य को सरल एवं तरल भावभंगिमा में परिभाषित किया है।

उपन्यास की भाषा–शैली वर्तमान प्रचलन में आए पात्रों के अनुकूल रोजमर्रा वाली अंग्रेजी, अंगिका, बंगला मिश्रित हिंदी का समन्वय जिस प्रकार किया गया है, वह वर्तमान हिंदी गद्य की एक विशेषता बन गया है। साहित्य के अनुसार उपन्यास वह कृति है, जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है। इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है, हमारी ही भाषा में प्रयुक्त किया गया है।

वास्तव में उपन्यास रचना किसी निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर होती है। केवल मनोरंजन या कल्पनालोक का निर्माण करना ही उपन्यासकार का दायित्व नहीं है। आज उसका दायित्व सत्य का अन्वेषण करना, मूल्य निर्माण और दिशा निर्देशन का भी है तथा अपने अनुभवों को भी पाठकों तक पहुँचाना उसका खास उद्देश्य हो जाता है।

औपन्यासिक परिवेश एवं आज के इस दौर में स्त्री– शोषण का एक पहलू यह भी है कि एक स्त्री ही दूसरी स्त्री के शोषण का कारण बनती है और गर्ल फ्रेंड बनकर पुरुष के साथ रहनेवाली लड़की का कभी भला नहीं हो सकता। गर्लफ्रेंड बॉयफ्रेंड का आधुनिक फैशन सिर्फ यौन–तुष्टि के लिए ही जोर पकड़ता जा रहा है। उपन्यासकार पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों की बढ़ती काम पिपासा पर काफी तंज कसता है। रज्जू इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है तथा वह आदर्श समाज का ऐसा पुरुष पात्र है, जिससे सिर्फ सामाजिक हित की ही अपेक्षा की जा सकती है। लेखक समाज के हर पुरुष से रज्जू जैसा बनने की अपेक्षा करता है, तभी अनेकानेक समस्याएँ सुलझ सकती हैं। बहरहाल, लेखक उसके माध्यम से पुरुष–विमर्श के लिए कि बौद्धिक समाज को आमंत्रित करना चाहता है। उसके सद्गुण ही उसकी कमजोरियाँ बन जाते हैं, जिनका अनुचित लाभ (विनीता) बेबी नाम की लड़की तथा उसके इर्द–गिर्द रहनेवाली स्त्रियाँ संगठित होकर उठाती है।

इस उपन्यास का केंद्रीय भाव अत्यंत प्रभावशाली, प्रेरक और सकारात्मक है, जो जीवन को सोद्देश्य और समाजोचित ढंग से जीने का संदेश देता है। उपन्यासकार पूरे मानव–समाज की बेहतरी के लिए अकेला बाँग देकर अंधी–बहरी जनता को जगाता हुआ नजर आ रहा है। आज मनुष्य–जीवन और रिश्ते अत्यंत जटिल होते जा रहे हैं। मनोविज्ञान के अनुसार परिस्थिति के, सोच के, वातावरण के, मनुष्य के साथ हुए अन्याय के, उसके साथ हुए व्यवहार के, उसके स्वभाव के आदि ऐसे कई मनोवैज्ञानिक कारण हैं, जो मनुष्य के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं। उसकी मानसिक स्थिति देह का सुख, मन का विलास और बुद्धि का विलास आदि बिंदुओं पर निर्भर करती है। लेखक के ही शब्दों में–''रज्जू की चेतना में विनीता के कहे वाक्य गूंजने लगते कि पहले उसने दोस्ती कबूलवाई और बाद में दोस्ती का स्तर पूछने लगी। फिर सारे शर्त हटा दी और बताने लगी पाप और पुण्य की परिभाषा, जो यह कि किसी का दिल तोड़ना पाप है और सुख देना पुण्य। इसलिए शारीरिक सुख–भोग अनुचित नहीं है।'' और वह संवेदनशील कलाकार, फोटोग्राफर रज्जू सोचने लगता है–''यह हाई–प्रोफाइल सोसाइटी क्या ऐसी भी होती है?इस सोसाइटी में लोग कितनी आसानी से सेक्स के धरातल पर पहुँच जाते हैं। कोई लाज नहीं, कोई शर्म नहीं। इतनी सहजता से सेक्स के लिए पूछ लेते हैं, जैसे चाय–पानी के लिए पूछ रहा हो।''

उपन्यास की संरचना में भाषा एक प्रधान घटक है। उपन्यासकार जो भी कहना चाहता है, उसे उसने किस दर्जे की भाषा में, किन रचनात्मक कौशलों, भाषा की अर्थवत्ता को बढ़ानेवाली किन रचनात्मक उक्तियों का प्रयोग किया है, यह जानना भी बेहद महत्त्वपूर्ण है। अपने यथार्थ से रचनाकार की टकराहट और उससे टकराकर उपन्यास का भवन खड़ा करना एक कठिन और जटिल रचना–प्रक्रिया का अंग है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में बात करें तो निजी और सामाजिक जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करनेवाला यह उपन्यास अपने परिवेश के साथ संगति बिठा पाया है, साथ ही कथा को भाषागत उपादानों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यासकार खासकर इसकी प्राथमिकता दी है। नई अन्तर्वस्तु अपने साथ किस नए रूप का वहन करती है, इसे हम भाषा संबंधी विशेषताओं के संदर्भ में जान पाए हैं। इस उपन्यास की संवाद योजना भी शिल्प का एक विशिष्ट पक्ष है। उपन्यासकार का अपने समाज से, उसकी समस्याओं से संबंध और जीवन के विविध चित्रों का यथार्थ चित्रण उसे परिवेश के प्रति जागरुक और संवेदनशील बनाए रखा है।

लेखक यहाँ भविष्य के लिए चिंतन का एक विस्तीर्ण प्रयास भी छोड़ जाता है। उपन्यास के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अभिकल्पित पात्रों और घटनाओं के प्रतिरूपों से हम सब पर इसका दुष्प्रभाव भविष्य में भी पड़ता रहेगा। हाँ, अब यह हमारे ऊपर है कि हम उन्हें अपने सामाजिक परिवेश में स्वीकार करते हैं या यह सोचकर उन्हें एक सिरे से खारिज कर देते हैं कि इनसे हमारी सामाजिक समरसता और संस्कृति तहस–नहस हो जाएगी। हमें उनके बारे में गंभीरता से सोचने की जरूरत भी है। बहरहाल इसमें चित्रित कुछेक पात्रों की तरह हमारी भावी संततियों को बनना होगा और समाज पर नकारात्मक प्रभाव छोड़नेवाले ज्यादातर पात्रों को दरकिनार करना होगा। हमारे समाज में नासूर की तरह फैल रही उन प्रवृत्तियों और आचरणों की भर्त्सना भी करनी होगी, जिनकी वजह से हमारी सामाजिक सेहत लगातार गिरती जा रही है। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि ''उपन्यास केवल एक साहित्यिक रूप नहीं है, वह जीवन जगत को देखने की एक विशेष दृष्टि है और मानव–जीवन तथा समाज का एक विशिष्टबोध भी।''

लाख आकर्षित करने के बाद भी फोटो सेशन में फोटोग्राफर रज्जू जब अपने धैर्य को नहीं खोया और काम निपटाकर इस प्रकार वापस आया कि इनके चरित्र और व्यवहार को देख बेबी भी अपने आपको बदलने का निश्चय कर ली। यह बात बेबी के परिजनों से छिपी भी न रही। बेबी का परिवार उस कलाकार रज्जू से बेबी की शादी भी करने को तैयार हो गए। पर, रज्जू अपना छोटा–सा स्टूडियो चलाकर ही खुश था और उस घटित
घटना को अपनी कल्पना से ही उतार दिया। पर, इस कथानक को कथाकार अधूरा समझकर चिंतित है कि बहुत–से ऐसे प्रश्न हैं, जो अनसुलझे ही रह जाते हैं और इस उम्मीद से उपन्यासकर इसे पाठक पर छोड़ देते हैं कि ''आपके (पाठक के) मन में भी कहीं अभाव खटकता हो या प्रश्न उठता हो, तो उसे उजागर करने से नहीं हिचकें, जो मेरा सौभाग्य होगा।''

उपन्यासकार भाषा में व्यंजना के माध्यम से चरित्रों पर तंज कसते संवाद जहाँ एक ओर कथा की रोचकता को बढ़ाते हैं, कहानी का विकास करते हैं, चरित्र भीतर क्या सोच रहा है और प्रत्यक्ष में कैसा व्यवहार कर रखा है– इस

अंतर को भी सामने लाते हैं। उपन्यास को पढ़ने के उपरांत महानगरों में रहनेवाले एकाकी मध्यवर्गीय परिवार की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति घरेलू नौकर रखने की उनकी क्षमता, रहन–सहन, खान–पान, शौक आदि का प्रामाणिक और जीवंत चित्रण पाठकों को मिलता है, तो दूसरी ओर सामान्य जीवन बितानेवाले पात्रों और उनकी स्थितियों का चित्रण मिलता है। इस प्रकार उपन्यास में सांस्कृतिक वैविध्य दिखाई देता है।

साहित्य और समीक्षा किसी अजनबी शब्द की तरह लगते हैं। लिखना तो एक नदी के प्रवाह की तरह है। लिखने की प्रक्रिया मानो किसी पहाड़ से फूटा झरना है। कुछ लेखक मानते हैं कि कोई है, जो उनसे लिखवा लेता है। माहौल, परिस्थिति और मनोस्थिति के कारण सृजन खुद संभव हो जाता है। उपन्यासकार यहाँ आधुनिक, वैचारिक और बौद्धिक जगत में उपन्यास को आख्यान के उपकरण के रूप में कम और विमर्श के एक उपकरण के रूप में अधिक लेते हैं। यहाँ लेखक उपन्यास की तात्त्विक विवेचना की बजाय उसकी वैचारिक और बौद्धिक भूमिका को रेखांकित करने में अधिक रुचि लेते हैं। इसलिए वे उपन्यास को लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद, इतिहास, समाजशास्त्र जैसी अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हैं।

जैसा कि सभी जानते हैं उपन्यास मानव की सर्वतोन्मुखी स्वतन्त्रता की उद्घोषक विधा है। आज का जीवन गायन–नर्तन और सम्मोहन का नहीं है। अब अतीत की गौरवगाथा भी अपना महत्त्व खो चुकी है। अंत अब उनसे लिपटे रहना और जीवन की प्रत्येक प्रेरणा उनमें देखना, स्वयं को अंधकार में रखने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आज के जीवन सूत्र भी यथार्थता, स्पष्टता, ध्रुवता, मांसलता, बौद्धिकता और स्तरीय निर्बन्धता अनकर रह गयी हैं। इन्हीं तत्त्वों के सार से ही इनका उपन्यास का यह स्वरूप गठित हुआ है। इसमें मनुष्य के चरित्र का बाह्य पक्ष या आचरण पक्ष तो प्रस्तुत हुआ ही है, साथ ही उसके मन की विभिन्न स्थितियों का भी उद्घाटन हुआ है। इस उपन्यास की रचना हेतु उपन्यासकार श्री रंजन जी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

प्रकाशक श्वेतवर्णा, बेगूसराय
लेखक का सम्पर्क सूत्र– 9570453539

कविता

यादें कभी खत्म नहीं होती

डॉ. संजय सिंह
प्रिंसिपल, पूर्णियाँ महिला कॉलेज
पूर्णियाँ–854301

उस पुल को पार करें या न करें
उस सड़क पर चलें या न चलें
उस गाँव या शहर को लौटें या न लौटें
यादें कभी खत्म नहीं होती
यह कहना कि समय के साथ सब गायब हो जाता है
गलत है/आदमी के साथ तो एकदम नहीं
एक टीस सी उठती है मन में
पूरे वजूद को बेधती हुई....
पहले बचपन छूटा
फिर गाँव
फिर भूख और भविष्य की चिंता से
छूटा भागलपुर
पटना, दिल्ली, कटिहार, किशनगंज करते
न जाने कब मैं बूढ़ा हो गया
पता ही नहीं चला
यह सही है कि तेज रफ्तार से बदलती
इस दुनिया में कुछ भी अपनी जगह पर नहीं है
न प्रेम, न लगाव और न भौगोलिक परिवेश
पर जैसे गाँव को भूलना कठिन है
वैसे ही भगालपुर को भी
वह आज भी मेरे जहन में
जस का तस है
साहबगंज से लेकर उर्दू बाजार तक
भूतनाथ, बूढ़ानाथ, जोगसर, आदमपुर बरारी
सारे गली–मुहल्ले, सिनेमा हॉल, सड़कें, दुकानें
अमलतास और गुलमुहर के फूल
मारवाड़ी कॉलेज, टी.एन.बी से लेकर
पी.जी. डिपार्टमेंट के सहृदय शिक्षक
और वो हसीन लड़कियाँ
आवारे–सा आर्ट थियेटरों से लेकर रेडियो स्टेशन तक
हमारा यूँ ही घूमना/ मटरगश्तियाँ
और साहित्यिक बहसबाजियाँ
पढ़ाई के नशे में घुला
नशे–सा
जवानी का नशा
गंगा कसम! भागलपुर
आज भी
मैं तुम्हें इतना चाहता हूँ
कि मेरा बस चले
तो तुम्हारे लिये बनाऊँ
कुछ सुन्दर 'आँखें 1
जो फिर से सब कुछ देख सकें
और एक ऐसा 'डिटर्जेंट' 2
जो तुम्हारे रेशमी कपड़ों पर
लगे धब्बों को
हमेशा के लिए धो सके।

1. आँखें–अँखफोड़वा कांड के कलंक को,
2. डिटर्जेंट–भागलपुर देश के दाग को।

समीक्षा

असतो मा सद्गमय

दयानन्द जायसवाल
9931240303

'असतो मा सद्गमय' एवं 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' डॉ. जनार्दन यादव, मटियारी, सुपौल (बिहार) ने अपने दोनों काव्य संग्रह में मानव को अतिशय बौद्धिकता और विज्ञानी विद्रुपता से सर्वथा मुक्त करने सहज–सरल रूप में सुख–दुख, हर्ष–विषाद, भय– सन्त्रास की सीमाओं से ऊपर ले जाने का सद्प्रयास किया है। इस रचना के माध्यम से जीवन के सम्यक् विकास को दर्शाया गया तथा समाजोत्थान और राष्ट्रोत्थान हेतु दिशा दिग्दर्शन किया गया है। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या द्वेष आदि मनोविकारों का भी विश्लेषण मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में लाना इनकी खास विशेषता है।

डॉ. जनार्दन यादव की रचनाओं में लघुकथा, कहानी– संग्रह, नाटक, गद्य काव्य, महाकाव्य, शोध निबन्ध संग्रह, निबन्ध संग्रह और काव्य–संग्रह आदि शुमार हैं। इनका कविता संग्रह 'असतो मा सद्गमय' दो भागों में विभक्त है–प्रथम खण्ड शहर और वृक्ष है, जिसमें 54 कविताएँ हैं, तो दूसरा खण्ड सूर्योदय का इंतजार है, जिसमें 40 कविताएँ हैं। इनका दूसरा काव्य संग्रह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' है, जिसमें पाँच खंड है– प्रथम खण्ड के अंतर्गत 'वसन्त और वर्षा', द्वितीय खण्ड में 'प्रेम, सौंदर्य और यौवन' है, तृतीय खण्ड में 'दीप और दीपावली', चतुर्थ खण्ड में 'विविध भाव प्रसंग' और पंचम खंड में 'देशप्रेम और वीरता' है, जिनमें कुल 116 कविताएँ हैं। कवि ने अपने इन काव्य संग्रहों में नीति, सद्भाव, धर्म, अध्यात्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, नारी विमर्श, पर्यावरण आदि विषयों पर गहन विमर्श को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है। इनकी ही एक पहली कविता 'परिंदा' है–

''था असीम व्योम का सफर
लौटा परिंदा थककर
करता विश्राम चारा चुगकर
झाँकता भीत नजरों से बाहर
है उसे बाज का इंतजार
जो ले जाता प्रत्येक दिन आकर
बिरादरी को झपट्टा मार
रिश्तेदारों की मौत पर
गम का जन मना रहा
निश्चित होकर सोच रहा
भूखा–नंगा रह लूँगा
टूटे नीड़ में और कहूंगा–
मुझे मत खाओ प्रजातन्त्र में
मेरे रक्त–मांस से बने तंत्र में
बलिष्ठ हुए मेरी दुर्बलता लेकर
बाज को चक्कर लगाते देख ऊपर
आँखे क्षितिज से जा लगीं।
मौत की दूरी घटने लगी।''

इनकी कविताओं में जीवन के सच्चे लगाव प्रकट होती है तथा मानव मन के सरल निश्छल भावों की अभिव्यक्ति समायी है और किसी पावन स्वर की तरह से कोई जीवन राग इन कविताओं में गूंजता अभिभूत करता है। साथ ही, कविताओं में सभ्यता, संस्कृति, नैतिक मूल्यों, पारस्परिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों, राजनीतिक प्रदूषण एवं जीवनादर्शों पर चिंता व्यक्त की गई है। मानवीय हिंसात्मक प्रवृत्ति, प्रतिशोधात्मक वृत्ति, नारी के प्रति क्रूर दमनात्मक संस्कृति के विरुद्ध आवाज उठाई गई है, जिससे समाज में समतामूलक समरस समाज की स्थापना हो सके। खोई हुई मानवता एवं मानवीय संवेदना की तलाश इनके काव्य में देखने को मिलती है। इनकी एक दूसरी कविता 'मध्यवर्ग' की कुछ पंक्तियाँ हैं–

''उसके नंगे शरीर में
कलपती आत्मा रहती है
असत्य स्वप्नों का जाल बुनकर
तैयार करता है अपनी ही चिता
विवाह के इंतजार में
घरों में बैठी गुमसुम लड़कियाँ
दर्पण में बार–बार अपना चेहरा देखती
पद्धति अखबारों में
दहेज हत्याओं के समाचार
उसकी ठहरी हुई आँखों के समक्ष
धरती बंजर है और आसमाँ सूखा
वृद्धावस्था में माता–पिता रोते
पारिवारिक विघटन का रोना
सास–पतोहू, भाई–बहन,
ननद–भौजाई के बीच
छिड़ी है असमाप्त जंग.....।''

समाज में व्याप्त विषमता और इसकी अनेकानेक विसंगतियों का चित्रण भी समान रूप से अंकित हुआ है। इसलिए काव्य चेतना की दृष्टि से इन कविताओं में व्यवस्था के प्रति आक्रोश और क्षोभ के भावों का भी प्रकटन हुआ है और अपने रचना विन्यास में कवि ने यथार्थ के अनेकों लक्षित प्रसंगों को कथ्य के रूप में उठाया है–

''भ्रष्टाचार मिटाने की बात करे तो
नीति ईमान काँप कर रह जाता है
अपने हरम में नंगा बेशरम है जो
सबका अगुआ कहलाता है...
चुनाव जीतकर सबको ठगते
विश्वास मत में लाखों में बिकते
जन प्रतिनिधि के विपरीत है चरित्र
मातृभूमि के ये बदनाम भित्तिचित्र।''

खामोश शहर की दीवारे तहजीब की बखिया उधेड़ती दिखाई देती हैं। यह बात तब और भी अधिक समझ आने लगती है, जब मानव ही मानव के काम न आ रहा हो और मानव ही मानव के लिए नए–नए झंझट और नए–नए क्लेश बोने में माहिर होता दिखाई दे रहा हो। इनकी ही कविता की पंक्तियाँ हैं–

''कहते हम सब भाई–भाई
पीछे खोदते सम्प्रदाय की खाई
देकर एकता का नारा
बनते भाई का हत्यारा
निगलकर अजगर–सा–तिमिर खण्ड
बन गए हैं हम अजगर
आदमी होता अजगर
तो सड़ती है आस्था
लहू–चर्बी के मध्य

लेकिन मतान्धों कुकर्मियों
धारा के शत्रुओ! सुनो–
नंगा नहीं है लहू हमारा....।'''

आज मानव की जिज्ञासा ने उसके हाथों में कलम की जगह हथियार थमा दिए हैं। यही कारण था कि जिसने दृढ़ता से कलम को थामा, उन्होंने इतिहास लिखा और जिसने हथियार थामे, उन्होंने सभ्यताएँ बदलीं, संस्कृतियाँ नष्ट कीं और कई संहारक युगों का सूत्रपात किया। इनकी ही एक दूसरी कविता है–

''सरजमीं पर उतरकर
गगन बिहारी आतंकवाद
ईर्ष्या द्वेष की आह में
घरों का भस्मसात कर
करने लगा है औरतों बच्चों का अपहरण
खून के रिश्ते को खून से रँगने के लिए
वे जबरन कर दिए जाते गायब ...।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्यकार की साधना और सिद्धि दोनों का यही रहस्य है कि जिसके मूल में रसानुभूति और सौन्दर्यानुभूति की भावसम्पदा होती है, वही मूल्यपरक साहित्य सृजन में सत्यं शिवं एवं सुंदरम् को अभिव्यक्त कर पाती है। सुंदर काव्य–सृजन के लिए कवि डॉ जनार्दन यादव को हार्दिक बधाई एवं सफलता हेतु शुभकामनाएँ।

प्रकाशक समीक्षा प्रकाशन दिल्ली
कवि का संपर्क सूत्र– 9939216504

समीक्षा

जीवन के चिथड़े पन्ने

राजीव कुमार ओझा
बनारस (उ.प्र.)
मो–9415376349

वयोवृद्ध मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. कृष्णावतार त्रिपाठी राही का एकेडमी प्रेस इलाहाबाद से मुद्रित, हिन्दी साहित्य समिति ज्ञानपुर से प्रकाशित काव्य संग्रह 'जीवन के चिथड़े पन्ने' चौथेपन में जीवनसंगिनी श्रीमती ज्ञान त्रिपाठी का साथ छूटने के बाद के एकाकी जीवन की मार्मिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति करता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री राही ने गीत, ग़ज़ल, मुक्तक की पुष्पांजलि अपनी जीवनसंगिनी श्रीमती ज्ञान त्रिपाठी को अर्पित की है। कवि के संवेदनशील मन दाम्पत्य जीवन के स्मरणीय पलों को सुंदर शब्द–शिल्प में लिपिबद्ध किया है, कहीं संवाद–शैली में विछोह का मार्मिक शब्दचित्र, तो कहीं जीवन–साथी को एकाकी जीवन जीने के लिए अकेला छोड़ जाने की व्यथा को रेखांकित करते उलाहने के रूप में। मेरी लेखन यात्रा में यह पहला काव्य संग्रह है, जिसे पढ़ते समय कवि श्री राही की व्यथा को गहराई से महसूस किया, बार बार आँखें नम हुईं और कुछ रचनाओं में विछोहवश– जन्य दर्द की अनुभूति से मैं फफक–फफककर रोया। 'अकेले ही' शीर्षक गीत कवि के अंतर्मन की व्यथा की बानगी देखिए–

''मेरा जीना है अब इक बहाना प्रिये
देह का एक ढाँचा सजाना प्रिये!
साथ कोई नहीं जो चले दो कदम
बस अकेले ही है आना जाना प्रिये!''

एकाकी जीवन में अपनों की उपेक्षा का दर्द कवि ने 'यारों मैं सीख गया जीना' शीर्षक रचना में लिपिबद्ध किया है–

''मेरी जिनको परवाह नहीं
हम भी परवाह नहीं करते
अब सीख गया हँसते रोते
मैं घाव पुरानों को सीना
पारों में सीख गया जीना।''

एकाकी जीवन में अपनों की उपेक्षा से मर्माहत कवि की व्यथा की झलक 'ये अपने हैं' शीर्षक रचना में मिलती है–

''घनघोर निराशा के तम में
मैं फिरता मारा मारा
मैं कहता हूँ ये अपने हैं
वे कहते मैं बेचारा हूँ।''

अब कोई भी गीत शीर्षक रचना में अपनी दिवंगता जीवनसंगिनी ज्ञान से कवि का संवाद दिल को झकझोरता है– ''इस भरे संसार में अरमां अनाथ हुए हमारे
जी रहा कैसे बताऊँ ज्ञान अब तेरे बिना रे
आँख से आँसू ढरकते हृदय में तूफान है
अब हमारा घर बना मेरे लिए श्मशान है।
ज्ञान कोई है नहीं यह दर्दे दिल किसको दिखाऊँ
अब न कोई मीत जिसको गीत में अपने सुनाऊँ।''

एकाकी जीवन, अपनों की उपेक्षा का दर्द कवि के एक मुक्तक में ध्वनित होता है–

''तुम रही साथ तो राह आसां रही
अब तेरे बिन न जीने की आशा रही
किस तरह से कटे जिन्दगी का सफर
जब खड़ी साथ केवल निराशा रही।''

'क्यों रोयें' शीर्षक रचना में कवि की व्यथा एकांकी जीवन जीने को अभिशप्त लोगों को एक सकारात्मक संदेश देती है–

''माँ–बाप की अहमियत
अब नहीं समझते बच्चे
जब जिंदगी जीना मजबूरी है
तो क्यों न हँसकर जीयें
क्यों रोयें किससे रोयें?''

इस काव्य संग्रह मे श्री राही ने चंद शेर भी परोसे हैं–

''तुम्हारे बिना मेरा जीना है ऐसे
कोई खुद लिए लाश अपनी हो जैसे।''

मैं आश्वस्त हूँ श्री राही का यह काव्य संग्रह हिन्दी साहित्यानुरागियों द्वारा सराहा जाएगा। हिन्दी साहित्य में 'जीवन के चिथड़े पन्ने' एक कालजयी कृति के रूप में अपना स्थान बनाने मे सफल होगी।

समीक्षा

सच्चाई की तह से निकली कविता

डॉ. लव कुमार
गढ़बनैली, पूर्णियाँ (बिहार)
मो.–9430276299

इधर कुछ समय से हिंदी काव्य–परिदृश्य में सक्रिय और प्रकाशित सदानंद सुमन की कविताओं के कई रंग तथा संदर्भ उभरकर सामने आए हैं। उन्होंने अपने अब तक के काव्यकर्म से जिस विषय वैविध्य, वस्तु–परिकल्पना, संवेदना और सरोकारों को अभिव्यक्त किया है, उसकी सामर्थ्य और सार्थकता इसके लिए बाध्य करती है कि उनकी कविता को महज अनुभूति की अभिव्यक्ति के क्षेत्रफल में सीमित न किया जाए। अपनी मूलगामिता और स्थानीयता को बचाए रखते हुए अपने चतुर्दिक फैले संसार को सतत बृहत्तर करने की आकुलता सदानंद सुमन की कविताओं को व्यापकता प्रदान करती है। सीमित जीवनानुभवों और आत्मलीन अभिव्यक्तियों के संकीर्ण दायरे इन कविताओं ने अब तक विनिर्मित नहीं किए हैं, जो एक अच्छा संकेत है। उपलब्धियों से बेपरवाह उनके व्यवहार में एक उल्लेखनीय काव्य–संघर्ष दिखाई देता है। उनकी कविता मात्र कविता पढ़कर कविता लिखने और उसे प्रकाशित कराने के उन क्षुद्र प्रयत्नों से बहुत दूर है, जो अंततः एक संवेदनशील कवि को अन्यान्य काव्येतर व्यस्तताओं में उलझाकर उनकी संभावनाओं को नष्ट कर देते हैं। संभवतः इसीलिए कवियों की लंबी पाँत से वे अब तक दूर हैं और यही इनके काव्यधर्म के स्थायित्व का प्रमाण है।

सदानंद सुमन का कविता–संग्रह 'खबरों की दुनिया' में अपनी वैचारिक ताजगी, अनुभूति की सहजता, बेबाक अभिव्यक्ति की क्षमता, मुक्तछंदीय काव्यशैली और व्यापक जीवन परिवेश से उठाए गए विषयों–संदर्भों से संपृक्त है। काव्य विषय के अनुशीलन के उपरांत यह सहजाभास होता है कि संघर्षशील जीवन जीते हुए लगातार छोटी–बड़ी कविताओं का लेखन इनका रुचिकर कवि– कर्तव्य रहा है। इस काव्य–संग्रह में कुल 74 कविताएँ संकलित हैं, जिनमें तनावपूर्ण जिंदगी की उठा–पटक के साथ ही आम आदमी का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता और उनकी दिनचर्या को शब्दाकार देने की परिपूर्णता है। संपूर्ण कृति के काव्य–विषय पर दृष्टिपात करने पर यह साफ झलकता है कि इन कविताओं में जिम्मेदारियों और जीवन–यापन की दैनंदिन समस्याओं तथा चिंताओं की बोझ तले दबे, थके–हारे आम लोगों की यथार्थता का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। लेकिन उल्लेखनीय है कि उनके जीवन यथार्थ का उद्घाटन मात्र ही कवि–कर्म बनकर नहीं रह गया है, बल्कि जीवन के भीषण झंझावातों के बीच भी अपने सरोकारों के बंधन से जुड़े होने की तसल्ली और जीवनोद्देश्य से जुड़े होने का भाव भी है।

संग्रह की पहली कविता 'खबरों की दुनिया' में है, जिस पर काव्यकृति का नामकरण भी किया गया है। कवि ने खबरों को इस दुनिया की सच्चाई को उकेरते हुए संवेदनाओं के मोलहीन हो जाने, आम आदमी की पीड़ाओं–यातनाओं की कथा को सनसनीखेज बना देने, सपनों की दुनिया में सैर करने जैसी बातें
कह दी हैं। यह युगीन यथार्थ है, जो मात्र खबर बनकर अपना अस्तित्व खो देती हैं। 'निश्चिन्त लोग और मैं' कविता की ये पंक्तियों देखें– ''अपना पहाड़ बेचैन करता है मुझे/जिम्मेदारियों का मजबूत धागा/टूटता नहीं कहीं से/ मैं ही रह जाता हूँ टूटते–टूटते भीतर से।'' (पृ. 44) लेकिन सच्चाई यह है कि टूटता हुआ यह कवि हारता नहीं है और न अपनी जिद्द से पीछे हटता है, क्योंकि एक संवेदनशील व्यक्ति को कविता टूटने–बिखरने ही नहीं देती। कविता कवि के अंतर्मन को टूटने से बचाती भी है और जीवन को यथारूप स्वीकार कर जीने की प्रेरणा भी देती है। कविता का उद्देश्य भी यही है। सपनों की सुनहरी दुनिया से बाहर निकलकर जीवन की पथरीली राहों पर चलने के दौरान जब पैरों में छाले पड़ते हैं, तब कविता का वास्तविक काव्यधर्म आरंभ होता है। कवि उन परिस्थितियों और विडंबनाओं की तलाश करता है, जो आदमी को ऐसी नारकीय एवं कष्टप्रद जीवन जीने को बाध्य करती हैं। उस व्यवस्था का कोई अर्थ और औचित्य नहीं है, जो आम आदमी के हितार्थ कुछ सोचने तथा करने में अक्षम हो अथवा उसके प्रति उदासीन हो। कविता का दायित्व निर्धारित करने के ब्याज से कवि इन्हीं सवालों को उछालता है, जो सोचने के लिए बाध्य करनेवाली है–''जिंदगी की असली मकसदों से/जब हटाकर ध्यान/मोड़ दिया जाता है एक साजिश के तहत/ गैर जरूरी चीजों की ओर/ शुरू होता है कविता का दायित्व।'' (पृ. 14) 'जीवन के लिए' नामक कविता भी बेहतर दुनिया की तलाश करती है, जिसमें कवि की संघर्षशील चेतना की झलक मिलती है। जीवन में उतार–चढ़ाव और परेशानियाँ आती–जाती रहती हैं, पर उनसे जूझना और भविष्य की चिंता करना ही आज के आदमी की जीवनगत सच्चाई है। जीवन से जगत तक, प्रकृति से मानव तक, संघर्ष से समाधान तक और विचार से अभिव्यक्ति तक को स्पर्श करती, संबोधित करती, इन सबके बीच एकसूत्रता और तारतम्यता खोजती यह कविता जीवन जीने की प्रेरणा देती है और अन्याय, भुखमरी, क्रंदन, अंधकार, प्रदूषण के खिलाफ तैयार होने का सबक भी।

संग्रह की कविताएँ जीवन के विविध क्षेत्रों से रू–ब–रू होती हैं, मानो कवि ने पूरे परिवेश का गहन अवलोकन किया हो। देश, समाज, राजनीति, आम आदमी, जीवन–स्थिति, संघर्ष, दंड, यथास्थिति के प्रति विरोध, उलझनें और इन सबके बीच पिसता हुआ एक साधारण आदमी का दृश्य–चित्र प्रभावित करनेवाला है। केवल इन बिंदुओं पर ही नहीं, बल्कि 'मेरे लिए कविता', 'कविता दायित्व', 'रच रहा हूँ मैं कविता', 'कवि को चाहिए' इत्यादि कविताओं में कवि और कविता के अंतःसूत्रों की तलाश कविता के दायित्व एवं उद्देश्य, कवि–कर्म पर विचारोद्गार भी हैं। इसी तरह आम आदमी के जीवन–संदर्भों और उनकी संघर्षशील चेतना की पुरजोर समर्थन करती कविताएँ भी हैं। इन कविताओं से निम्न मध्यवर्गीय बौद्धिक वर्ग का जो चेहरा उभरता है, वह अपनी वास्तविकता में आज लाख कोशिशों के बाद भी हाशिये पर जीने को बाध्य है। सब कुछ देखते–समझते हुए भी वह लाचार तथा निरुपाय है, उसका सीधा प्रतिकार नहीं कर पाता। जीवन में राजनीति के प्रवेश ने सामान्य जनजीवन को इतना असंतुलित, त्रस्त और जटिल बना दिया है कि उसमें मानवीय संवेदना और सहानुभूति के लिए कोई जगह नहीं बची है। वैश्वीकरण और बाजारीकरण की अंधी दौड़ में सब कुछ बाजार में बदल गया है, जहाँ हर चीज बिकने को रखी हुई है, सिर्फ पॉकेट में पैसा होना चाहिए–''खुला है बाजार/ जुड़ी है हर चीज/ इसकी नियति से/ कि तय है हरेक की कीमतें/ अदा करो/ लो और/ चलते बनो।'' (पृ. 83) इसके अलावा समय और राजनीति की आहट भी अपने त्रासद अनुभव के साथ सुनाई देती है। 'बिका हुआ आदमी' कविता में मूल्यहीन आदमी में भी संभावनाओं की

तलाश उल्लेखनीय है। बिका हुआ आदमी सत्य का सामना नहीं कर सकता, अपनी रीढ़ खो चुका होता है, वफादार नहीं होता, उसका ज़मीर मर चुका होता है और उसे कोई भी झुका सकता है, लेकिन वही समष्टि की बेहतरी के लिए रची जा रही बेहतर दुनिया की राह का पत्थर भी होता है। 'वह बाँचता शांति संदेश' कविता में वैश्विक राजनीति का पर्दाफाश करते हुए मानवता की हिफाजत के नाम पर अस्त्र–शस्त्रों की बिक्री का भंडाफोड़ किया गया है और शांतिदूतों का चरित्रोद्घाटन भी इसके अलावा 'वे नहीं होते खतरनाक', 'देवता कहलाता है', 'ताकतवर आदमी', 'भोला मेमना' आदि अर्थगर्भित और चिंतनीय कविताएँ हैं। 'जीवन के रंग' कविता में इंद्रधनुषी जीवन के रंगों को बरकरार रखने के लिए झूठे अभिनय की बातें चुभनेवाली हैं।

सदानंद सुमन ने अपने लंबे जीवनानुभव में अनेक रंग और रूप देखे हैं। इसलिए वे अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर आँखिन देखी सच्चाई को कहने में थोड़ा भी विचलित नहीं होते। सामाजिक ताने–बाने से झूठे महिमा मंडन के आवरण को भेद कर हाशिये पर फेंक दिए गए लोगों के जीवन की कविता हो या देश–समाज की दुर्गति से बह निकली संवेदना हो, विसंगतियों और विडंबनाओं से उद्भूत आह हो या कविता कहने की जरूरत हो, कवि ने हर चुनौती को स्वीकार किया है। संग्रह की प्रत्येक कविता सच के ताप से तपकर निकली हुई है, जिनमें विगत तीन दशकों का अनुभव अंतर्भुक्त है। अनुभूतियों के उदात्त स्वरूप की तलाश में सदैव नई भाषा, नई कहन और नए प्रतीक–बिंब में रहते हुए भी यथार्थ अनुभूतियों को उभारना उनका कवि–कर्म है। इनको भाषा और शब्दों पर अद्भुत पकड़ है। यह उनकी पहली कविता पुस्तक है, लेकिन कविताएँ इतनी गंभीर और गूढ़ हैं कि लगता है इन्होंने काव्य–शिल्प के अनुरूप वैचारिक और मानसिक तैयारी करते हुए विनम्रता के साथ कलम थामी है। भाषा और शब्दों में ताजगी तथा तरंग है, जिससे कविताएँ सहज गति से बहती, अपनी स्वाभाविक गतिशीलता में अर्थ संप्रेषित करती जाती है। अधिकांश कविताएँ छोटी या मध्यम आकार की हैं, लेकिन कवि ने निपुणता से उसमें सार तत्त्व डाल दिया है।

सदानंद सुमन, खबरों की दुनिया में, (कविता–संग्रह), प्र. सं. 2022
पुस्तक भवन, नई दिल्ली–110015, मूल्य 295/–

कविताएँ

डॉ. अशोक गुजराती, ई–1317,
भैरवी रेसीडेंट, बेवरेली पार्क,
मीरा रोड पूर्व, मुम्बई–401107,
मो.–9971744164

गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र'
117 आदिलनगर,
विकासनगर, लखनऊ
(मो.9956087585

अनुनाद

अंतस से संवाद करें
पीड़ा का अनुवाद करें
थोड़ समय निकालें हम
मीत पुराने याद करें
प्रकृति हमें समझाती है
तनिक प्रकट आहलाद करें
त्यागें सब रोना–धोना
गीतों का अनुनाद करें
एक कदम पीछे हट लें
आपस में न विवाद करें
साथ नहीं कुछ ले जाना
किसके लिए प्रमाद करें
पिंजड़े में उड़ना भूला
पक्षी को आजाद करें।

प्रतिभूति

आने दो
बारिश को आने दो
चाहे निकाल लो
अपना छाता, अपना रेनकोट
या भींगो सर से पाँव तक
पर न खीजो इससे

यह रोक सकती है
किसान की आत्महत्याएँ
और सरकार की वर्जनाएँ

इससे आगे होगा मौसम खुशनुमा
यह पहुँचाएगी रोटी
अन्नदाता तक
लहलहाएगी उसकी फसल
कर देगी तुम्हारा जीवन भी सरल

सुगंध इसकी बस जाएगी
तुम्हारे रोम–रोम में
खेत से बहकर सीधे
तुम्हारी सुबह, तम्हारी शाम में

तुम्हारी तृप्ति
हो सकता है
सिद्ध हो प्रतिभूति
ऋण चुका दे खेतिहार का

गर वह, उसका परिवार
बच गया
बरसात के साथ देगा
तुम को भी दुआ।

अनिषाद

मैं निषाद नहीं हूँ
शास्त्रों के अनुसार निषाद वह वर्ग है
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के अलावा
पंच–जन में समाहित
ब्राह्मण पिता और शूद्र माँ के समागम
अर्थात अवैध से उत्पन्न
बेचारा–सा व्यक्ति : वर्णातीत एवं बहिष्कृत
स्त्री हो या कि पुरुष
जिसे शूद्र से भी गया बीता माना गया
मैं वह नहीं हूँ
कदापि नहीं
यह प्रश्न यक्ष के इतिहास में मेरे उल्लेख से बचते रहे लोग
हालाँकि था तब भी
चलो, मैं वर्तमान ही सही
मुझे भी तो जन–सामान्य में करो सम्मिलित
मैं पैदा हुआ फिर वही तथाकथित नाजायज संतान के रूप में
पर इस बार मेरा पिता है शूद्र और माँ ब्राह्मणी
हे शास्त्रियो! मुझे क्यों वर्जित रखा तुमने पहले इसके?
कितने चालाक हो तुम

समीक्षा

गंगा से कावेरी जीवन्त कहानियाँ

विजय कुमार तिवारी
फ्लैट 1002, महालक्ष्मी विहार
भुवनेश्वर, उड़ीसा
मो.–9102929190

विजय कुमार तिवारी शैलेन्द्र चौहान का सद्य: प्रकाशित कहानी संग्रह 'गंगा से कावेरी' मेरे सामने है। इस संग्रह में अलग–अलग भाव–संवेदनाओं की कुल 13 कहानियाँ हैं। शैलेन्द्र चौहानजी अपने लेखकीय में लिखते हैं–''मनुष्य के जन्म के साथ ही कहानी का भी जन्म हुआ और भाषा के विकास के साथ कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परम्परा रही है।'' संग्रह की कहानियों के संदर्भ में उनका कहना है–''ये बिल्कुल अलग ढब की
कहानियाँ हैं।''

डॉ. प्रकाश मनु ने 'शैलेन्द्र चौहान की कहानियों को जिंदगी की गुम त्रासदियों के अक्स' कहा है। वे लिखते हैं– ''शैलेन्द्र चौहान की पहचान ज्यादातर उनकी कविताओं से है, पर वे बड़े अच्छे गद्यकार भी हैं। उनके पास सीधे–सादे, मामूली लफ्जों से बड़ी बात कहने की कूबत और एक सधी हुई भाषा है, जिससे अपेक्षित प्रभाव से पैदा कर पाते हैं।'' इन कहानियों को लेकर उनका स्पष्ट कहना है–''शैलेन्द्र अपनी कहानियों में अपनी गुम चोटों और अपने आसपास और परिवेश की टूट–फूट और छूटती जा रही जगहों को दिखाना कहीं ज्यादा जरूरी समझते हैं।'' उनकी यह बात भी सही है–''उनका सबसे बड़ा आकर्षण यह है कि वे पूरी तरह उनके अनुभवों की कहानियाँ हैं, जिन पर आप भरोसा कर सकते हैं।''

विवेच्य संग्रह की कहानी 'हम भीख नहीं माँगते' अक्टूबर 1984 की तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है। जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी, उसके बाद बिल्कुल ऐसा ही हो रहा था। उस वक्त घटित घटनाओं एवं स्थितियों पर
कहानीकार की स्वीकारोक्ति का अपना मर्म है–मैं अपनी असमर्थता, ग्लानि, क्रोध और क्षोभ से अंदर तक हिल गया था।'' यह भी सत्य है–''वे (दंगाई) उस वक्त न हिंदू थे, न सिख, न ईसाई, न
मुसलमान।'' उस वक्त नये प्रधानमंत्री के बयान पर लेखक की प्रतिक्रिया साहसिक और लेखन–धर्म के अनुकूल है, जिसने उनके (पीड़ितो) घावों पर नमक छिड़कने का ही काम किया। दंगों के पश्चात् कहानी के सूत्रधार द्वारा सहयोग के लिए हाथ बढ़ाने पर
मकान मालिक बलविंदर सिंह की प्रतिक्रिया उनके पुरुषार्थ और आत्मविश्वास को दिखाती है–''नहीं, सिंह साहब! हमारे हाथ–पैर सलामत हैं, हम भीख नहीं माँगते।'' यह उन सब पर जबरदस्त व्यंग्य है, जो दिन–रात मुफ्तखोरी में लगे हुए हैं। यह बीमारी है, जो सामाजिक और नैतिक मूल्यों को कमजोर करती है और हमारे पुरुषार्थ के विपरीत है।

दूसरी कहानी 'कृष्णोत्सर्ग' व्यवस्था पर गंभीर प्रश्न उठाती है। यह भावुक करनेवाली कहानी है। किशन की परिस्थितियों, संघर्षों और विचारों का चित्रण करते हुए शैलेन्द्र जी लिखते हैं– ''किशन के प्राण तो उस व्यवस्था ने ले लिये, जो किसी पढ़े लिखे युवक को सम्मानजनक और उचित रोजगार के लिए दर–दर की ठोकरें खाने को विवश कर देती है।'' साथ ही उन्होंने किशन जैसे लोगों के मनोचिन्तन का भी उल्लेख किया है. अक्सर हमारी कोई सोच हमें उबरने नहीं देती। कहानी में जीवन की जटिलताओं का यथार्थ उल्लेख हुआ है।

संप्रति 'अपौरुषेय' विधुरचंद जैसे भ्रष्ट मैनेजर की पतनशील जीवनलीला की कहानी है। यहाँ कहानीकार ने उन बिन्दुओं की पड़ताल की है कि कैसे ज्यादतियाँ लोगों के जीवन को प्रभावित करती हैं और उनमें सुधार की संभावनाओं को खत्म करती है। संदेश यही है कि जिस तरह कोई पीड़ित–प्रताड़ित होता है, अवसर मिलने पर वह दूसरों को पीड़ित–प्रताड़ित करता है। यह भी संदेश है इस कहानी का कि जब एक बार पतित होकर कोई गिरता ही चला जाता है, वह उसे कुछ विवेकपूर्ण बात सुनाई नहीं देती। लगता है उन्होंने किसी को खूब गहराई से देखा है, तभी ऐसा सशक्त चित्रण हुआ है। यहाँ भी व्यक्ति का मनोविज्ञान समझा जा सकता है।

शैलेन्द्र चौहान अपने आसपास की खूब गहन भाव से पड़ताल करते हैं और सामाजिक संगतियों–विसंगतियों को साफ–साफ ढूँढ निकालते हैं। उनके पास शब्द सामर्थ्य है और चरित्रों की समझ भी वे हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बेहिचक करते हैं और प्रवाह बना रहता है। 'मेरे सामने वाला' समाज का, आसपास रहनेवालों के बीच का, आर्थिक स्थिति, व्यवहार व दिनचर्या का, स्त्री–पुरुष की सोच और चिन्तन का जबरदस्त चित्रण करती कहानी है। आग्रह–दुराग्रह, आकर्षण विकर्षण, प्रेम की कल्पना और सबके भीतर छिपा राग व जुगुप्सा जैसे भाव खूब चित्रित हुए हैं। बड़ा लेखक वही है, जो आत्मनिरीक्षण करता है, अपने भाव–विचार व सोच को यथार्थत: लिखता है और यह खूबी शैलेन्द्र जी में स्पष्ट दिखाई देती है। शैलेन्द्र जी 'बड़े भैया' लिखते हैं, अपनी स्मृतियों को खंगालते हैं और सशक्त अनुभव–जन्य संस्मरणात्मक कहानी बनती है। यह कहानी के साथ–साथ उस समय का जीवन्त चित्र है, जिसमें उस काल खण्ड का इतिहास, सम्पूर्ण दृश्य लोगों के संघर्ष और संवेदनाएँ घुले–मिले हैं। भाषा–संस्कृति, पहनावा, खानपान आदि को समेटती उनकी कहानियाँ बहुत कुछ दिखाती, समझाती हैं। लेखक की सजगता और भाव–संवेदना देखिए, लिखते हैं–''यहाँ तो मैं अपनी आँखों से देख रहा था, यहाँ की हवा की गंध मन में भर रहा था।'' दूसरा प्रसंग देखिए–''मुझे गाँव से जाने और दादी से
बिछड़ने के कारण रोना आ रहा था।'' दो बोलियों–भाषाओं के बीच या दो लोगों के बीच का संवाद रोचक है। इस कहानी में हर मौसम उभरता है, मिट्टी की पहचान होती है, सम्पूर्ण सौन्दर्य या
चुनौतियाँ चित्रित होती हैं, होली–दीवाली जैसे उत्सव पर्व जीवन्त होते हैं। यहाँ बचपन का सारा अनुभूत संसार चित्रित हुआ है।

'दादी और जनवादी कहानी शिविर' किंचित् भिन्न मनोभाव की कहानी है। सबकी अपनी–अपनी आवश्यकताएँ हैं, मजबूरियाँ हैं और अपना–अपना उद्देश्य साधने की कोशिश है। रिश्तों का मनोविज्ञान यथार्थ के साथ अद्भुत तरीके से रेखांकित हुआ है। दादी की मनोदशा, उनकी नाखुशी और अपने देखे दृश्यों का बार–बार उल्लेख कहानीकार की मानव मन की पकड़ दिखलाता है। यह अपने तरह की संस्मरणात्मक कहानी है।

'घिरे हैं हम सवाल से' यूनियन, कामगार, इंजीनियर, सरकारी अफसर, शोषण और संघर्ष की कहानी है। शोषण होगा तो कोई–न–कोई विरोध करनेवाला निकल ही आयेगा। यहाँ सुजीत है, जागेसुर और रूपा भी है। यह अंदाज लगाना कठिन नहीं है कि
जागेसुर में कुछ ऐसा करने की अदम्य इच्छा है, जो शोषण के खिलाफ है। जागेसुर को पता है, समस्याएं बहुत विकट हैं, सरकारी अधिकारी भ्रष्ट हैं, इंजीनियर सिर्फ मशीनों के लिए बने होते हैं, आदमियों के लिए नहीं। मजदूरों की सुरक्षा की किसी को परवाह नहीं है। मजदूर ठेकेदार से लोगों को आदमी

समझने की गुहार कर रहे हैं। एक अवांतर प्रसंग में सुजीत को वह भावुक और कमजोर समझता है और उससे उसकी मित्र वर्तिका को लेकर बहुत कुछ कहना, पूछना चाहता है। कहानी के आखिर में खबर मिलती है कि सुजीत पर किसी ने कुल्हाड़ी से हमला किया है। सुजीत की तबीयत बिगड़ रही है। सुजीत–जागेसुर संवाद वैचारिक भेदों–मतभेदों का प्रकटन है और उन्होंने सशक्त चरित्र उभारा है। सामंतवादी और औपनिवेशिक जैसे शब्द कहानीकार के अध्ययन– अनुभव से उभरे हैं, जिन्हें वह ऐसे हालात में चरितार्थ होते देखते हैं। स्त्रियों को लेकर दृष्टिकोण थोड़ा लचीला है। प्रिय–अप्रिय घटनाएँ तेजी से घटित होती हैं और परेशान करती है। यह कहानी कुछ बुनियादी प्रश्न उठाती है, जिनका सही समाधान तलाशने की निरंतर एक कोशिश है। सुजीत का स्थानान्तरण चमोली हो गया है, कामगारों का मत है–यह साजिश के तौर पर करवाया गया है। वह सबको समझाता है–मैं अपनी जिम्मेदारियाँ आप सभी को सौंपता है, काम आपलोगों को ही आगे बढ़ाना है। आप हताश न हों, सब मिलकर काम करें। एक दिन आयेगा, जब समाज में बदलाव दिखाई देगा।'' इस तरह देखा जाए तो यह कथाकार के वैचारिक चिन्तन की सशक्त कहानी है।

'गंगा से कावेरी' ट्रेन यात्रा भर नहीं है, कथाकार का कोई सच है, जिसका सहज चित्रण पाठकों को बाँधता है। यहाँ समानान्तर दो यात्राएँ साथ–साथ चल रही हैं और कथाकार वैचारिक उलझनों में खोया हुआ है। जीवन में बहुत कुछ असहज करनेवाला है। सोचने या चिन्तन करने के पक्ष में तर्क है–''सोचने से अवचेतन की इच्छाएँ संतुष्ट होती हैं। जिंदगी में बहुत कुछ किया नहीं जा सकता, बस सोचकर ही थोड़ा खुश हुआ जा सकता है।'' हंसराज रहबर का उपन्यास 'दिशाहीन' प्रभावित नहीं करता। पति–पत्नी के बीच के आपसी सम्बन्धों पर कहानीकार का चिन्तन अनेक प्रसंगों में उभरता है, दीप्ति की याद आती है और स्त्री स्वतंत्रता को लेकर दीप्ति व नीरा की समान सोच है। वे लिखते हैं–''गंगा कावेरी एक्सप्रेस न कोई घटना है, न कहानी। बस एक ट्रेन है, जो निरंतर चली जा रही है।'' उन्होंने नाना संदर्भों में महत्त्वपूर्ण लेखकों को याद किया है, यथा सुखी–दुःखी होते हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि वे क्रान्ति को परिभाषित करना चाहते हैं तथा निष्कर्ष निकालते हैं, जिनके पास पैसा है, साधन है, वे गरीब और दुर्बल मनुष्यों के श्रम का उपभोग कर रहे हैं और गरीब व दुर्बल इसे अपनी नियति मान बैठे हैं।

हास्य व व्यंग्य से गुथी कहानी 'पोथी लिख–लिख जग मुआ' लेखन जगत की सच्चाई है, राई–रत्ती भर अंतर नहीं है, लगता है कहानीकार ने बहुत करीब से सब कुछ देखा, अनुभव किया है। संयोग ही है, वे स्वयं कवि, कहानीकार और पत्रिका के संपादक भी हैं। उनका एक तरह से साहस भी है, वस्तुस्थिति को
उजागर करना। पत्राचार की शैली सच्चाई व्यक्त करने में सहायक है, सारे पात्र और दृश्य कहानी को जीवन्त बना रहे हैं। 'इंद्रजाल' कहानीकार के अनुभव, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, व्यावसायिक, नैतिक–राजनैतिक समझ और उसपर महल खड़ा करने के अद्‌भुत प्रयास की कहानी है। यह भी एक तरह का व्यंग्य ही है और सचाई यह है कि ऐसे पात्र भरे पड़े हैं हमारे समाज में। वैचारिक मतभेदों के आधार पर कहानीकार के मंतव्य को समझा जा सकता है और किसी पर भी चस्पां किया जा सकता है। कहानी के बिंब रोमांचित करते हैं, भाषा और शैली प्रभावशाली है, वे लिखते हैं–''उनकी स्थिति उस रूपसी जैसी थी, जो अपने रूप और चंचलता से अनेकों पुरुषों को फ्लर्ट करती है। वह भी उसी तरह अपना लॉलीपॉप दिखा–दिखाकर अनेकों लोगों को फ्लर्ट करते थे।'' कहानी अंत आते–आते संदेश देती है, एक दिन उनका पराभव होता है और उनका इंद्रजाल खण्ड–खण्ड हो चुका होता है। ऐसी कहानियाँ अक्सर किन्हीं गहरी अनुभूति की प्रतिक्रिया में चित्रित होती है और खूब पढ़ी–सराही जाती हैं।

स्थानीय शब्दावली और मुहावरे के साथ शैलेन्द्र चौहान जी गाँव–जवार, जाति–धर्म का खेल खूब समझते हैं और राजनीति भी। 'लोक सेवक' सहकारी बैंक के अध्यक्ष के चुनाव से जुड़ी कहानी है। यहाँ जड़ जमाए सम्पन्न लोगों के बीच का जोड़–तोड़ चुनाव को प्रभावित करता है, शैलेन्द्र जी ने यही दिखाने की कोशिश की है। राजनीति में किसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। लोभ–लालच, दारू–शराब और भय दिखाने जैसे सारे हथकंडे अपनाए जाते हैं। इनके आगे सब बेबस, लाचार हो जाते हैं। 'प्रार्थना की शक्ल में एक अदद विडंबना' कहानी में व्यंग्य है और वैचारिक टकराहटों से भरे संवाद हैं। कहानीकार को देश समाज के हालात की भरपूर जानकारी है और उन्हें पता है, ऐसे में उनके द्वारा उठाए मुद्दे सामनेवाले को निरुत्तर करने के लिए पर्याप्त है। कहानी का एक संदेश यह भी है, वादे, नारे, मत, मुद्दे जो भी हो, सबको नौकरी चाहिए, काम चाहिए और घर में सबके लिए रोटी चाहिए। सत्ता में बैठे लोगों द्वारा अक्सर चतुराई से वही मुद्दे उठाए जाते हैं, जिससे सामनेवाला असहज हो सके। ऐसे ही जीत–हार का खेल चल रहा है और देश–समाज भी कहानी के सच को किसी तरह खारिज नहीं किया जा सकता। कुल मिलाकर यह कहानी सोचने–विचारने के लिए लोगों को बाध्य करनेवाली है।

शैलेन्द्र चौहान जी की कहानियों में खास तरह की रोचकता है, उनका झुकाव आम आदमी, कमजोर और लाचार व्यक्तियों के प्रति है। उनके सधे हुए प्रश्न उत्तर खोजते हैं। इस क्रम में उन्हें जूझना–टकराना अच्छा लगता है, क्योंकि उनकी अपनी वैचारिक सोच और चिन्तन है। 'एक अबूझ कहानी यह भी' पाठकों को उनकी इंगित दिशा में ले जाती हुई कहानी है। वे बुनियादी सवाल उठाते हैं और नाना तरह के लोगों से मिलते हैं। यह शैली और उनका तरीका कहीं व्यंग्यात्मक लगता है और कहीं गम्भीर चिन्तन की मुद्रा अख्तियार करने को बाध्य करता है। उन्हें उत्तर आधुनिकता के बारे में जानना–समझना है। समाज के हर तबके के लोग अपनी राय देते हैं, जितना समझते हैं। अधिकांश लोग जानते ही नहीं, अर्थशास्त्री मानते हैं कि देश मे तरक्की हुई है। वैसे अगर हमारे चरित्र में थोड़ी–सी ईमानदारी आ जाए तो बात ही कुछ और हो। रिक्शावाला पूछता है–''बाबूजी! आपने बताया नहीं, हवाई जहाज के बाद क्या आएगा?'' उत्तरिच्छा यानी जहाँ चाहो, अपनी इच्छा से उड़ चलो। वे एक लेखक से मिलते हैं, भूतपूर्व साहित्यकार व अभूतपूर्व मार्क्सवादी से उनके विचार सुनते हैं और वे गैर–मार्क्सवादी उद्‌भट विद्वान से मिलते हैं। अन्ततः एक खुर्राट उत्तर आधुनिकता विरोधी से मिलन होता है। वे एक ही समय में दक्षिण और वाम दोनों थे। कहानी के प्रारंभ में कहानीकार ने लिखा है–''मेरा लेखकों की बिरादरी में कोई सम्मानजनक स्थान नहीं बन पाया है।'' अंत में लिखते हैं–''उत्तर आधुनिकता की लड़ाई में मैं कहीं शामिल नहीं था, इससे स्पष्ट था कि मैं घटिया और पिछड़ा लेखक था, जिसकी प्रतिष्ठा न होना स्वाभाविक था।'' लेखक की व्यंग्यात्मक शैली प्रभावित करती है।

इस तरह देखा जाए तो इस संग्रह की कहानियाँ कहानीकार के अनुभूत जीवन और वैचारिक चिन्तन से ओतप्रोत है। इसमें कथागोई है, संवाद है और संस्मरणात्मक प्रवाह भी है। शैलेन्द्र जी व्यक्ति और समाज को अच्छी तरह समझते हैं, उनके बीच व्याप्त विसंगतियों की पड़ताल करते हैं और सटीक विवेचना करते हैं। उनकी कहानियाँ प्रश्न उठाती हैं और सहज संतुष्ट नहीं होती। उनके व्यंग्य धारदार हैं, खूब आक्रामक और झकझोरने वाले। कहानियों में कहीं–कहीं हास्यपूर्ण स्थितियाँ उभरती हैं और ये स्वयं स्वीकार करते हैं–''मेरा कोई बड़ा दावा नहीं है, वे शायद किसी रुदिगत कसौटी, ढर्रे पा ढांचे पर खरी नहीं उतरती हैं।' ऐसी कोई बात नहीं है, उनकी कहानियों का अपना आलोक है, अपनी आभा है और पाठकों को प्रभावित करती दिखती हैं। विरोध, अन्तर्विरोध, भटकाव या वैचारिक मतभेदों का होना आवश्यक है, ऐसी चीजें चेतना जगाती हैं और श्रेष्ठ दृश्यों का संकेत देती है।

समीक्षा

भीड़ और भेड़िए

डॉ. प्रदीप उपाध्याय
उपाध्याय नगर, मेंढकी रोड
देवास, म.प्र.
मो. 9425030009

मानव चेतना को झकझोरता और आत्म साक्षात्कार कराता व्यंग्य संग्रह–'भीड़ और भेड़िए' बात कर रहा है। ख्यात व्यंग्यकार धर्मपाल महेन्द्र जैन और उनके सद्य प्रकाशित व्यंग्य संग्रह 'भीड़ और भेड़िए' की। पुस्तक समीक्षा में मैं भी करना चाह रहा था कि धर्मपाल कुछ इसी तरह से व्यंग्य विधा के क्षेत्र का एक जाना पहचाना नाम है और इसमें तनिक भी संदेह नहीं है, तथापि जब पुस्तक की भूमिका में ही ज्ञान चतुर्वेदी जी यह लिखते–लिखते रूक गए, तो मैंने भी अपना इरादा बदल दिया। वैसे यह सही है कि सोशल मीडिया के इस चमत्कारिक युग में पहचान का उतना बड़ा संकट नहीं है, जितना एक गहरी सोच और चिंतनपरक व्यंग्यकार को जानना और समझना। इस लिहाज से यहाँ मैं निश्चित रूप से वरिष्ठ व्यंग्यकार धर्मपाल जी का नाम रखना चाहूँगा। वे अपनी व्यंग्य रचना में किसी विसंगति, विद्रूपता या विरोधाभास पर तंज करने में कहीं सायास हास्य उत्पन्न नहीं करते, वरन् उनकी व्यंग्य रचनाओं में गंभीर चिंतन–मनन के साथ गहरे कटाक्ष का साक्षात्कार होता है।

कविता और व्यंग्य विधा में समान रूप से दखल रखने वाले धर्मपाल जी देश–विदेश के पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर रूप से अपनी रचनाओं के साथ उपस्थिति दे रहे हैं। जहाँ सात सौ से अधिक कविताओं के साथ दो कविता संग्रह 'कुछ सम कुछ विषम' तथा 'इस समय तक' प्रकाशित हो चुके हैं, वहीं 'इमोजी की मौज में', 'दिमागवालों सावधान' तथा 'सर क्यों दाँत फाड़ रहा है' के बाद अब चौथा व्यंग्य संग्रह 'भीड़ और भेड़िए' हाल ही में प्रतिष्ठित प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ है। यह व्यंग्य संग्रह अपने शीर्षक 'भीड़ और भेड़िए' को सार्थक करता प्रतीत होता है। 'भीड़ और भेड़िए' का चरित्र जगजाहिर–सा है और यह धर्मपाल जी की उक्त व्यंग्य रचना में प्रभावी ढंग से उभरता है।

136 पृष्ठों की इस पुस्तक में यूँ तो कुल 52 व्यंग्य आलेख हैं, जिनमें राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक साहित्यिक क्षेत्र की विसंगतियों, विरोधाभासों, अन्तरविरोधों और विद्रूपताओं पर जमकर प्रहार किया गया है।

व्यंग्य संग्रह का एक उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि पुस्तक की भूमिका वर्तमान दौर के व्यंग्य क्षेत्र के पुरोधा ज्ञान चतुर्वेदी जी ने लिखी है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि धर्मपाल जी का पहला व्यंग्य संग्रह वर्ष 1984 में प्रकाशित हुआ था, जिसकी भूमिका व्यंग्य विधा के पितृपुरुष हरिशंकर परसाई जी ने लिखी थी और उस भूमिका में परसाई जी ने व्यंग्य विधा के जो मंत्र दिए थे, उनका अनुसरण धर्मपाल जी के व्यंग्य आलेखों में यत्र–तत्र दिखाई देता है। इस बात को लेखक ने अपनी 'वैचारिक दृष्टि' में कुछ यूँ बयाँ किया है–

''यंग्य का विद्यार्थी बने मुझे चालीस साल से अधिक हो गए हैं। इसकी बहुत सारी अकादमिक और भाषा–शास्त्रीय परिभाषाएँ पढ़ी। उनमें उलझी व्युत्पत्तियों के व्याकरण और तर्क मुझे मोहित नहीं कर पाए। व्यंग्य के वैचारिक पक्ष को जानने के लिए जिज्ञासावश नोबल पुरस्कार के लिए सात बार नामित जार्ज मैरीडिथ के निबंध भी पढ़ डाले। पर मेरे मन में जो पाँच सूत्र अंकित रहे, वे परसाई जी के ये संक्षिप्त वाक्य हैं। मैं इन पंक्तियों को बार–बार पढ़ता आया हूँ, जो उन्होंने मेरे पहले व्यंग्य संकलन 'सर क्यों दाँत फाड़ रहा है' के पुरोवाक् के लिए 1982 में लिखे थे–''जरूरी नहीं कि व्यंग्य में हँसी आए। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करता है और परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है तो वह सफल व्यंग्य है।''

धर्मपालजी व्यंग्य रचना के लिए आवश्यक तत्त्वों की भी बात करते हैं। उनके मतानुसार चेतना को झकझोरना और आत्मसाक्षात्कार करना व्यंग्य की पहली माँग है। चेतना से जोड़ते
हुए व्यंग्य आत्मा, मन और बुद्धि तीनों को अपने व्याप में ले आता है। व्यंग्य के बारे में वे कहते हैं कि व्यंग्य चेतना का भाव है, जो केवल शब्द तो नहीं होता। उसके प्रकटीकरण अभिधा में शब्दों, वाक्य और वाक्यों के समूह की शक्ति होती है। इसलिए व्यंग्य के रचाव को केवल व्यंजना पर आधारित मानना एक सीमित दृष्टिकोण होगा। शब्द की दृश्य शक्तियाँ जिन्हें हम अभिधा, लक्षणा और व्यंजना मानते हैं, के अतिरिक्त भी गुप्त शक्तियाँ होती हैं।

व्यंग्य के विषय व्यंग्यकार को कहाँ से मिलते हैं, इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि–''व्यंग्यकार जनमानस से जुड़कर ऐसी सजी–धजी लुभावनी प्रवृत्तियों को पकड़ता है और उनकी विकृतियों को परत–दर–परत अनादृत करता है। ऐसा करने के लिए उसके पास समाज के विकारों को पहचानने की दृष्टि होना चाहिए।''

वे मानते हैं कि–''व्यंग्यकार की अपनी सीमाएँ होती हैं, इसलिए व्यंग्यकार का प्रमुख उद्देश्य व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करना तो हो ही। यह व्यवस्था सिर्फ राजनीतिक सत्ता या उसका चरणोपासक प्रशासन या धार्मिक सत्ता ही नहीं है। यह व्यवस्था वह समूचा समाज है, जिसे हम निर्मित करते हैं, जिसमें हम जीते हैं। ऐसे में जनमानस से जुड़े बिना व्यंग्यकार होने के मुगालते में रहना बहुत बड़ा भ्रम है और असत्य के साथ खड़े होकर सत्य की वकालत करना पाखण्ड है। ऐसे पाखण्ड से उद्वेलन नहीं होगा और न ही व्यंग्य उपजेगा।'' एक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख करना और समीचीन होगा, जिसमें व्यंग्यकार ने कहा है कि व्यंग्य का उद्देश्य मनोरंजन नहीं है और न ही व्यंग्यकार विदूषक।

चलिए, पुस्तक के जरिए व्यंग्यकार की गहन वैचारिक दृष्टि से तो साक्षात्कार हो ही गया, अब उनकी कुछ व्यंग्य रचनाओं पर भी बात कर लें। वैसे व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक ही अपनी बात कह देते हैं। जनतंत्र में जब जनता भीड़ में तब्दील होने लगे और भीड़ भेड़ बनने पर मजबूर हो जाए, तब भेड़िए भीड़ पर काबू करने लगते हैं। धर्मपाल जी के व्यंग्य संग्रह का पहला आलेख 'भीड़ और भेड़िए' की यह पंक्ति द्रष्टव्य है–''भेड़ें आदमी नहीं बन सकतीं। इसका यह मतलब नहीं कि आदमी भेड़ नहीं बन सकता। आदमी भेड़ क्या, भेड़िया बन सकता है और चमचमाता बिस्कुट दिखा दो तो मेमना भी बन सकता है।''

आम आदमी भीड़ का ही हिस्सा तो बनकर रह गया है। आज के दौर

में हरेक आदमी डरा हुआ है। व्यवस्था इतनी पथभ्रष्ट हो चुकी है, जिसने चहुँओर भय का माहौल खड़ा कर दिया है और
दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि आमजन निरीह बनकर तमाशा देख रहा है। धर्मपाल जी ने इसी आलेख में लिखा भी है–''डराने के लिए डर का भ्रम भी पर्याप्त है। वास्तविक डर की बजाय आभासी डर फैलाना और बनाए रखना सहज है। यह आदमी की भीड़ में बदलने का कामयाब फार्मूला है। भेड़ें और ऐसे पशु भीड़ बन जाएँ तो उन्हें एक साथ हाँकना आसान हो जाता है।''

देश में लोकतंत्र के विकृत होते स्वरूप तथा भीड़ तंत्र में तब्दील होते जाने पर यह कटाक्ष भी पाठक को भीतर तक उद्वेलित कर देता है–''एक भेड़ को डंडा दिखाकर चरवाहा सारी भेड़ों को एक साथ हाँक सकता है। पेशेवर चरवाहे जानते हैं कि भेड़ें न सिर उठाकर देखती हैं, न रास्ते से इधर–उधर होती हैं। एक के पीछे एक।'' भीड़ के चरित्र पर यह पंच वाक्य प्रभावी है, जिसमें कहा गया है कि–''आदमी पशु बनकर भी पशु जैसा वफादार नहीं बन सकता।''

लोकतांत्रिक व्यवस्था का इससे बड़ा मजाक और क्या हो सकता है! स्वतंत्रता के बाद इतनी सरकारें आईं और गईं, चाहे किसी भी दल की सरकार रही हो, लेकिन हालात ज्यों–के–त्यों ही रहे। व्यंग्यकार अपने निराशा के भाव को छुपा नहीं पाता है, 'प्रजातंत्र की बस में व्यंग्यकार ने लिखा है–''प्रजातंत्र की बस तैयार खड़ी है, सरकारी गाड़ी है, इसलिए धक्का परेड है।'' देश में यह मानसिकता जन्म ले चुकी है कि जो भी सरकारी व्यवस्था है, वह व्यवस्थित नहीं हो सकती। प्रजातंत्र को किस तरह से सभी
मिलकर विकृत कर रहे हैं, इसकी बानगी देखिए–''बस को धक्का लगाने के लिए सरकार ने बड़ा अमला रखा है। दायीं तरफ से आईएएस धक्का लगा रहे हैं। बायीं तरफ मंत्रीगण लगे हैं। पीछे से न्यायपालिका दम लगा के हाइशा बोल रही है और आगे से असामाजिक तत्त्व बस को पीछे धकेल रहे हैं। लोग सात दशकों से पुरजोर धक्का लगा रहे हैं, पर गाड़ी साम्य अवस्था में है।''

वर्तमान दौर में व्यक्ति पूजा और सामंती मानसिकता का पूरी तरह से बोलवाला है। लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाने के बाद भी इन विकृतियों को हम ध्वस्त नहीं कर पाए हैं। चाटुकारिता लोगों की रग–रग में समा चुकी है। 'भैंस की पूँछ' आलेख में व्यंग्यकार ने बखूबी व्यंग्य किया है–'मंत्रीवर के तलवों में चंदन–ही– चंदन लगा था। तब रसीलाजी और सुरीलीजी ने मंत्रीवर की जय–जयकार करते हुए कहा–नाथ! आपके पुण्य चरण हमारे भाल पर रख दें। मंत्रीवर संस्कृति रक्षक थे, नरमुंडों पर नंगे पैर चलने में प्रशिक्षित थे। उन्होंने सुरीलीजी व रसीलाजी के भाल पर अपने चरण टिका दिए। कलाकार की गर्दन में लोच हो, रीढ़ में लचीलापन हो, घुटने में नम्यता हो और पवित्र चरणों पर दृष्टि हो तो मंत्रीवर के चरण तक कलाकार का भाल पहुँच ही जाता है।''

एक अन्य रचना 'चापलूस बेरोजगार नहीं रहते' की ये पंक्तियाँ भी गहरा कटाक्ष करती हैं–''बेरोजगार रहने से किसी की चापलूसी सेवा भली। आप जिस किसी की चापलूसी करें, ठोक बजाकर देख लें कि वह टिकाऊ हो। यदि चापलूस–पालक टिकाऊ नहीं हुआ, तो कालांतर में समाज में बड़ी किरकिरी हो जाती है, धन और समय गया वह अलग।'' सरकारी सम्मान–पुरस्कार की चाहत आज से नहीं, सदियों से रहती आई है। कलाकार हो, साहित्यकार हो या बुद्धिजीवी, रीढ़विहीन होकर सरकार के गुणगान में इसी अपेक्षा के साथ लगा रहता है। व्यंग्यकार ने इसी मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए 'भाल तिलक सब छीनी रे' में लिखा है– ''कलाकार की लोक में प्रतिष्ठा राजा से जुड़कर दरबारी होने में है। नुक्कड़ आयोजनों में कलाकार भले ही चर्चित हो जाए, पर इस तिलक हीन भाल का क्या करें। अपनी कला को कालजयी बनाना हो तो कालिदास हो या तानसेन, दरबार में भर्ती होना पड़ता है।''

सरकारी नौकरियों में भ्रष्टाचार, ट्रांसफर पोस्टिंग, तबादला उद्योग के चर्चे तो होते रहते हैं। इस भ्रष्ट व्यवस्था पर 'डिमांड ज्यादा है थाने कम' में वे अपनी कलम चलाते हैं–''सभी डिवीजनों के विशेष थानों में थानेदारों की पोस्टिंग करने हेतु प्रशासनिक सुविधा के लिए मुहरबंद निविदाएँ आमंत्रित की जाती हैं। ये निविदाएँ 'आइटम रेट' पर 'कम्पेटेटिव्ह बिडिंग' के अन्तर्गत बुलाई जाती हैं। इसमें ए, बी एवं सी श्रेणी के लिए सुपात्र (जिन्हें आगे निविदाकार कहा है) निविदाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। लाइन अटैच लोगों के लिए यह सुनहरा मौका है।''

धर्मपाल जी ने जहाँ राजनीतिक–सामाजिक क्षेत्र की विसंगतियों और विद्रुपताओं पर जमकर अपनी लेखनी चलाई है, वहीं उन्होंने साहित्य जगत् में चाहे कवि हों या व्यंग्यकार, किसी को नहीं बख्शा है। कोरोनाकाल में सरकारी अव्यवस्थाएँ जहाँ व्यंग्यकार को बहुत आहत करती हैं और वह 'लाचार मरीज और वेंटिलेटर पर सरकारें' की रचना कर डालते हैं, तो दूसरी ओर इस त्रासदी से आए संकट पर वे 'नए देवता की तलाश' में भी जुट जाते हैं।

बात प्रदूषण की करें तो आज समाज का कौन–सा ऐसा क्षेत्र है, जो प्रदूषित नहीं है! इसी बात को 'दिल्ली है बिना फेफड़े वालों की' में वे कुछ इस तरह लिखते हैं–''शुद्ध हवा हल्की होती है और ऊपर उठ जाती है; गंदी हवा भारी होती है और हमारे गंदे राजनेताओं जैसी दिल्ली में बस जाती है।''

प्रवासी भारतीय व्यंग्यकार की दृष्टि सिर्फ अपने देश तक ही सीमित नहीं है। वे 'संस्कृति के नशीले संस्कार' में लिखते हैं–''प्रजा को नशेड़ी बनाकर रखो तो सरकार का निठल्लापन छूट जाता है। कैनबास और मैरवाना अब कैनेडियन व अमेरिकी संस्कृति के आधुनिक संस्कार हैं।'' इसी तरह 'अमेरिका में साँस नहीं ले पा रहा हूँ' में उन्होंने अपना आक्रोश कुछ यूँ व्यक्त किया है और प्रश्न भी उठाया है–''अपने अधिसंख्य गोरे होने की अभिशप्त कुंठा में अमेरिका जी रहा है। वहाँ के राष्ट्रपति जी रहे हैं। क्या समानता पर आधारित संसार का यह सर्वश्रेष्ठ समाज कभी समवेत कह पाएगा–हम साँस नहीं ले पा रहे हैं।''

इसी प्रकार से धर्मपाल जी ने अपनी दृष्टि सम्पन्नता, संवेदनशीलता और गहरी सोच के साथ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों और कुरूपताओं पर अपनी धारदार कलम चलाते हुए दिशा दर्शन किया है। व्यंग्य के शीर्षक अपनी बात कहने की क्षमता रखते हैं, तो निश्चित ही वे पाठकों को पढ़ने के लिए बाध्य भी करेंगे। धर्मपाल जैन के व्यंग्य आलेख शैली और शिल्प दोनों ही दृष्टि से उल्लेखनीय हैं, जिनमें विषय वैविध्य है। समाज में व्याप्त विषमताओं, विद्रूपताओं और विकृतियों को खोजकर अपनी व्यंजना शक्ति के माध्यम से आक्रोश को उन्होंने बेहतरीन अभिव्यक्ति दी है। उनकी अपनी कहन–शैली है, जिसके माध्यम से वे कई स्थानों पर व्यंजना के माध्यम से अपनी बात कहते हैं, तो कहीं–कहीं वे अपनी बात सीधी–सपाट कहने में भी संकोच नहीं करते।

निःसंदेह पाठकों को यह संग्रह आकृष्ट करेगा और पुस्तक पाठक वर्ग का भरपूर प्रतिसाद भी पाएगी। धर्मपाल जी को इस नए संग्रह के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

समीक्षक का पता

———

समीक्षा

नया रास्ता

अनिता रश्मि
1 सी, डी ब्लॉक सत्यभामा ग्रेड, कुसई
डोरंडा, राँची, झारखण्ड
मो. 9431701893

'नया रास्ता' हरे प्रकाश उपाध्याय का बारह वर्ष बाद प्रकाशित दूसरा कविता–संग्रह है। इतने लंबे अंतराल की वजह संभवतः यह कि कविताएँ पकती रहीं कवि के मानस में, मन में। परिवर्तित होते समय को क्षरित होते रिश्तों को संघर्षरत आम जन को, विविध आभासी दुनिया को, बाजार की इकाई के रूप में बदलते जा रहे समाज को, समय को और मशीनों पर निर्भर होते मनुष्य को कवि बड़ी गहराई से देखते–परखते रहे एक लबे वक्त तक। चुपचाप स्तब्ध होकर। तब कहीं ढल पाएँ कविता रूप में उनके सारे सरोकार ...शायद।

पहली ही 'अब यह देश' काव्य की पंक्तियाँ किसानों की दुर्दशा को रेखांकित करती हैं। कृषकों की आत्महत्या कवि को उद्वेलित करती है। वे विचलित हो उठते हैं। आशंका की कुहेलिका घेर लेती है कि कहीं सारे अन्नदाता आत्महत्या के लिए तो प्रेरित नहीं होंगे–

''एक ऐसा अंधा कुआँ है
जिसमें जब भी झाँकिये
किसी किसान की लाश तैरती हुई दिखती है।''

हमारे देश की बड़ी समस्या भूख पर हर कलमकार ने इस पर कलम चलाई है। भूख को ढोता हर मनुष्य उस दिन की प्रतीक्षा में है, जब उसे भूख से निजात मिलेगी। यह प्रश्न यक्ष प्रश्न बन गया है, जिसका जवाब युधिष्ठिर के पास भी नहीं। हरिया, बुधनी, रमुआ पूछता फिर रहा है–

''हर हाथ कमाएगा
हर मुँह पेट भर खाएगा
दिन वह कब आएगा
जब नहीं बुधिया का बेटा उपास रह जाएगा
कोई भूखा नहीं रह जाएगा।''

इसमें काव्य तत्त्व की कमी है। कुछेक अन्य काव्य में भी, लेकिन सब बड़े प्रश्न उठाती हैं। सजग कवि समय की केवल खूबियों से ही परिचय नहीं करवाता, समय और व्यवस्था की खामियों पर भी ऊँगली रखता है। अधिकांश कविताओं में हरे जी का वह कवि नजर आता है। ब्लर्ब पर अंकित निम्न पंक्तियाँ इसकी गवाह है–

''अरे ये तो इधर
काला जादू चल रहा है
भयानक खडहर व्यवस्था का
उसमें नए रंग रोगन
रंगों के भरम में
कभी भीड़ इधर भागे
कभी भीड़ उधर भागे।''

जीवन के अँधेरे–उजाले को समान रूप से सम्मान देनेवाले कवि किसी भी भ्रम के शिकार नहीं है। वे तटस्थ होकर दोनों को सामने लाने की कोशिश में हैं।

कवि, उपन्यासकार, प्रकाशक, संपादक हरे प्रकाश उपाध्याय ने खंडहर शीर्षक से सात कविताएँ लिखी हैं, जिनमें सरोकार और प्रतिरोध का स्वर बहुत मुखर है। खंडहर शीर्षक से लिखी गई इन कविताओं में कवि की चिंता मनुष्य और मनुष्यता के प्रति है। वे कमर कसकर इनके पक्ष में खड़ी नजर आती है। यथार्थवादी काव्य तीखे तेवरवाले हैं और चिंतन–मनन को मजबूर करते हैं।

''बौद्धिकता की चादर भर
रही हमारी दुनिया..
उसी में छुपकर देखे हमने बड़े–बड़े सपने
सिर्फ सपने सपने सपने
और सपने सपने सपने।''

कवि ठीक ही कहते हैं कि हम सपनों में ही सोने और जगनेवाले लोग हैं। इस विशाल भारत में अपना भारत खोजने की कवि की तलाश पूरी नहीं होती, यह विचारणीय तो है ही, चिंतनीय भी है। कोई भी साहित्यकार हर परिस्थिति में सही का साथ देना चाहता है।

''एक सही भविष्य बनाने के लिए
मैं एक गलत इतिहास नहीं पैदा कर सकता....।''

हर स्थिति के बावजूद आशा का दामन नहीं छोड़ना–एक मनुष्य की पहचान है, एक कवि की पहचान है। कविता–संग्रह का शीर्षक उम्मीद ही तो जगाता है कि नये रास्ते मिलेंगे जरूर। हरे प्रकाश के अंदर के कवि का विश्वास और हौसला पाठकों को आश्वस्त करता है। 'सपना' शीर्षक की कविता कहती है–

''बच्चा नींद से पहले सपने के बारे में सोचता रहा
सपने में एक गेंद होती
या एक गुलाब ही होता तो कितना अच्छा होता
बच्चे ने सोचा।''

बच्चों का यह सपना बचा रहे, बस यही तो चाहत है इस पुस्तक की और इसीलिए इसकी कविताएँ बहुत ही तीखे शब्दों में, पुरजोर तरीके से अपनी बात रखती हैं। परिवर्तन के लिए ये प्रतिकार जरूरी हो जाते हैं।

''दुख का दुख देखे
कहाँ रहते हैं दुख
क्या घर बदलते हैं दुःख
क्यों घर बदलते हैं दुख
दुःख क्या ओढ़ते–बिछाते हैं
अक्सर ये कहाँ आते–जाते हैं।''

एक अलग भाषा का गठन कर कवि ने अपने लिखने की जमीन तैयार की है। जानी–पहचानी स्थितियों पर सार्थक सारगर्भित लेखन। यहाँ स्त्री की चेतना यातना को भी स्वर मिला तो कविता को भी–

''कविता क्या है
नींद में जैसे सपना
जैसे किसी अपने का विलाप
जैसे पपीहे की बोली।''

'नया रास्ता' सपनों की बातें बारंबार करती है, सपने जगाने के लिए भी, सपनों से जगाने के लिए भी।... और फिर सपने देखने के लिए भी। पूरे होने के ख्वाब जगाती हुई...एक नये रास्ते की तलाश में।

समय से मुठभेड़ करती, प्रासंगिक सामयिक सवालों से व्यथित उद्वेलित करतीं, कलात्मकता की कसौटी से परे यथार्थ की कसौटी पर खरी उतरती पचासेक ज्वलंत कविताओं के नया रास्ता से मिलना पाठकों के लिए जरूरी।

समीक्षा

रोटी और लंगोटी

महेन्द्र नारायण सिंह
अ.प्रा.शिक्षक
केन्द्रीय विद्यालय

भोजन वस्त्र और आवास प्राणिमात्र की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। मानवेतर प्राणियों को वस्त्र की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति ने ही उनके शरीर को मौसमानुसार अनुकूलित कर ने दिया है। वैसे पालतू पशुओं को मनुष्य ने आवश्यकतानुसार या सजावट के लिए वस्त्राभूषित किया है। आवास की पूर्ति भी ये प्राणी अपने उद्यम से कर लिया करते हैं। चूहे के बिल, मधुमक्खी या बर्रे के छत्ते चीटियों के ढूँह, उनकी परिश्रमशीलता एवं सहयोग, पक्षियों के घोंसले, खासकर मौसमानुसार निर्मित बया के घोंसले को कवि ने (पिंजड़े की चिडिया) में आर्किटेक्ट का आदर्श और मनुष्य के लिये आश्चर्य दायक बताया है। सृष्टि के श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य से मनुष्येतर प्राणियों ने कुछ सीख नहीं ली है। अलबत्ता मनुष्य के सीखने लायक उनके पास बहुत कुछ है।

रही बात भोजन की, तो प्रकृति ने वह भी किसी–न– किसी रूप में उन्हें मुहैया करा दी है, क्योंकि उन्हें तो उदर–समाता भर चाहिये। इन्हें विश्वास है कि आवश्यकतानुसार उन्हें वह उपलब्ध हो जायगा। जबकि मनुष्य उदर–समाता से असन्तुष्ट असीम संग्रह का पक्षपाती है। इसी हबस में लाखों मुहताज–फटेहाल होने को अभिशप्त है। प्रत्येक की जरूरत के मुताबिक प्रकृति में प्रर्याप्त है, जबकि एक की हबस के लिए भी वह कम पड़ जाता है। कविता का शीर्षक 'रोटी और लंगोटी' मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति मुट्ठीभर कुटिल लोगों के षड्यंत्र से दुश्वार हो जाती है।

संग्रह का शीर्षक 'रोटी और लंगोटी' कवि की संवेदना का आलंबन है। कवि का मन 'नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम' में नहीं लुभाता है, रोटी और लंगोटी से तरसतों को ही संवेदना के केन्द्र रखकर कवि ने अपनी रचनात्मक को सार्थक माना है।

इस संग्रह में कुल 53 कविताएँ हैं। सभी छोटी–छोटी स्वतंत्र संग्रह कवि के गुरुदेव को समर्पित है। मेरे और कवि के गुरुदेव प्रकाण्ड विद्वान डा. खगेन्द्र ठाकुर की शुभकामना कवि को अर्जित है। विषय वैविध्य युक्त संग्रह संस्कृत और हिन्दी के यशस्वी विद्वान डा. दामोदर महतो के प्राक्कथन से सुसज्जित है। विषय विविधता के आधार पर कविताओं को कई भागों में बाँटा जा सकता है–

भक्ति–शिव वन्दना, एक में कवि अंगिका के लोकगीतों के द्वारा देवघर में उनके दर्शन का आकांक्षी है और दूसरे में शिव का परम्परागत स्वरूप वर्णित है।

राष्ट्रीयता–इसमें भारत है देश हमारा, जिसमें देश का समर्पण भाव से गान है। 'वतन' में कवि अपने सुन्दर चमन के प्रति समर्पित है। दुआएँ माँगता हूँ, मन में ही रह गई, न तुम कभी उदास हो, मदिरा की प्याली, आईना, बदनाम, चाँद शरमाया है, सुबास, सलामत रहो–में प्रिय के सौंदर्य, सौंदर्य प्रसाधन, उसके नयन, वाणी–वदन के सौंदर्य का अतिरेकी वर्णन है। कहीं–कहीं कवि अपने आलंबनों को चोर नजरों से निहारने का दोषी नजर आता है। 'मैं हूँ फूलवाली' फूलवाली के फूलों के विविध उपयोग को कवि ने सराहा है और 'आईना' कवि की रचनात्मक का विशिष्ट प्रयोग है।

सामाजिक सरोकार–इससे सम्बन्धित कविताओं को इस संग्रह में सर्वाधिक स्थान मिला है। लंगोटी, रोटी, आर्थिक असमानता, नेता में नेताओं की कथनी–करनी का विरोध, लूट की छूट, भ्रष्टाचार का, विकास और प्रदूषण, प्राकृतिक संतुलन के क्षरण का सत्ता–लोकतंत्र के आवरण में राजतंत्र, रोटी का मोहताज, राष्ट्रीय संपदा की लूट, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय नेताओं के दो मुँहे चरित्र और गाँव और शहर अपने शीर्षकानुसार ही चित्रित हो पाया है।

शेष कविताएँ कवि के भाव विशेष या विशिष्ट अनुभूति के उद्‌गार हैं। इनमें गया को सामान्य रूप के अलावा ।च्ल्प्ल्र थ्व्ल्र वाले रूप को भी जगह मिली है। 'किसान' की खुशहाली में देश की खुशहाली है। पिंजड़े की चिड़िया, पिंजरबंद पक्षी, दुख में न घबराने की सीख देता है। साथ ही खंजन, जाँघील, कोयल, मोर, चकवा–चकई, बगरो, गोरैया में क्रमशः मौसम की पहचान, अनुशासन, स्वर मिठास, अनुपम नृत्य, विरह–वेदना, हीर राँझा के क्रम में किया है। इसी तरह होली में होली के रंगीले रूप के अलावा मांस–मदिरा के चलन को भी स्थान मिला है। कोहरा में कोहरे का अपने पेशे (रेल) पर पड़नेवाले प्रभाव का बड़ा सटीक वर्णन है।

'आई रात' का चाँद दूल्हा, तारे बाराती, चकवा– चकई का विरह कमल का मुरझाना शब्द–मितव्ययिता से चित्रित है। नदी का स्वरूप दो तीरों से बहनेवाली, प्यास बुझाने, जलचर जीवों की शरणस्थली, खेतों की जीवनदायिनी और माँझी द्वारा पार लगाने का नाम है। दरिया सागर से मिलकर सागर बन जाती है, जैसे आत्मा परमात्मा से एकाकार हो जाता है। इसी तरह बरात का बहुरंगी चित्र है। गीत का कवि गीत लिखने का आशिक ही नहीं, माशूका के सौंदर्य का चोरी–छिपे दर्शन का भी लोभी है। 'पानी' में पानी से संबंधित मुहावरे–पानी रखना, पानी–पानी होना, बेपानी करना या होना, पानी पिलाना, पानी उताना, सात घाट का पानी पीना के साथ–साथ पानी संरक्षण पर भी बल देता है।

इसमें मुहावरे का भी प्रयोग किया गया है। आज के घर से आँगन का अभाव होने से आँगन के तुलसी चौरे की बालकनी के कोने में सिमट जाने का दर्द कवि को है। अपने निवास के शहर भागते हुए, प्रदूषित शहर की चिन्ता भी कवि को है। फटकार– दुत्कार से परेशान हो कवि रचने का सहारा लेता है, पता नहीं चल पाता। देश के उद्धार हेतु कवि परिवार नियोजन की अनिवार्यता का पक्षपाती है। इसके लिए वह लोकगीतों का सहारा लेता है। 'चली जा रही है' में कौन विकट अँधेरी रात में दिशाहीन, डगरहीन अकेली बढ़ी जा रही है, का पता नहीं चल पाता। कथ्य भी गायब है। 05 अगस्त, 2019 कश्मीर में धारा 370 की भी चर्चा है।

पूरे संग्रह में कवि तुक, लय और गेयता का विशेष आग्रही है। इस आग्रह के कारण भगोटी–लंगोटी, रोटियाँ, धोतियाँ, चट्टियाँ, टाटियों, बेटियाँ, चुट्टियाँ, अंतड़िया जैसे शब्दों का प्रयोग भोंडे से लगते हैं। एक ही कविता में कई तरह के भावों का गुंफन कविता के मूल कथ्य में व्याघात पहुँचाता है।

कहीं–कहीं अस्पष्टता दीखती है, यथा साहिल कहाँ जो दरिया को धार बता दे तथा धरा से था जिन–जिन को प्यार, लिया है उसने पल्ला झाड़। भाव, भाषा और लिपि–संबंधी त्रुटियाँ भी खलती हैं। यथा रूप निराली, निर्यात का यह अति कुकृत्य की घने छाँव प्रिंटिंग की भूल हो सकती है। आईना प्रयोगधर्मी कविता है। होली और कोहरा मजमा शैली में निबद्ध है। कुछ जगहों पर इति वृतात्मकता और उपदेशात्मकता द्विवेदी युग का प्रभाव दर्शाता है।

संग्रह से गुजरते हुए भाव और शैली के बहुरंगी–अनोखे रूपों से कविता के इस नये विकास के दर्शन होते हैं। आवास– परिचय में भी कवि को गद्य अपेक्षित नहीं लगता, इससे कवि की कविता के प्रति गहरा लगाव दीखता है। साहित्य से इतर पेशे (रेल) के बावजूद कवि की यह उपलब्धि अत्यन्त सराहनीय है। कवि की काव्य प्रतिभा के निरंतर विकास की कामना के साथ।

रचनाकार : सुनील कु. पटेल

समीक्षा

पत्रकारीय प्रयोगधर्मिता का वह अप्रतिम युग

डॉ. आर. के. नीरद
पटना
मो. 8789097471

पिछले दिनों आशुतोष चतुर्वेदी की दो किताबें आयीं, 'यायावर शब्दशिल्पी बनारसीदास चतुर्वेदी' और 'प्रतिबिंब आशुतोष चतुर्वेदी हिंदी पत्रकारिता के गंभीर प्रयोगधर्मी और अनुभवी हस्ताक्षर' हैं। पत्रकारिता में प्रायः 30 वर्षों की उनकी विशेषज्ञता है। वे देश की हिंदी पत्रकारिता में अनुभवी और विशेषज्ञ पत्रकारों में गिने जाते हैं। विदेशों में भी काम करने का गहरा अनुभव रखते हैं। प्रसिद्ध समाचार पत्रिका 'माया', 'इंडिया टुडे', 'संडे ऑब्जर्वर', 'जागरण', 'बी.बी.सी. लंदन' और 'अमर उजाला' से जुड़े रहने के लंबे अनुभव के बाद सम्प्रति 'प्रभात खबर' के प्रधान संपादक हैं। प्रतिबिंब उनके उन चुनिंदा आलेखों का संकलन है, जो प्रभात खबर के संपादकीय पन्ने पर छपे हैं। दूसरी पुस्तक पं बनारसीदास
चतुर्वेदी के जीवन, व्यक्तित्व और उनके कृतित्व के विभिन्न आयामों को रेखांकित करनेवाले आलेखों और खासकर उनसे जुड़े संस्मरणों पर केंद्रित है। पुस्तक में बनारसीदास चतुर्वेदी पर 21 लेखकों के आलेख, तत्कालीन उपराष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा का पंडित जी पर दिया गया व्याख्यान, पंडित जी के दो आलेख, प्रेमचंद के साथ के उनके दो दिन रहने का संस्मरण, उनके द्वारा लिखा एक पत्र तथा राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा पंडित जी को लिखा एक पत्र संकलित है।

स्थूल रूप में इस पुस्तक की दो बड़ी विशेषताएँ हैं। एक यह कि इसका संपादन उनके पौत्र आशुतोष चतुर्वेदी ने किया है। श्री चतुर्वेदी की पत्रकारिता के प्रथम प्रेरक पुरुष स्वाभाविक रूप से पंडित जी ही थे। दूसरी बात कि इसमें जिन 21 लेखकों के आलेख हैं, वे लेखन के क्षेत्र में स्वनामधन्य तो है ही, पंडित जी से निजी तौर पर उनकी गहरी निकटता रही या उनसे बहुत गहरे तक प्रभावित रहे। लिहाजा, यह पुस्तक पंडितजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर गहनता और समग्रता से इतनी सामग्री समेटे हुए है कि नयी पीढ़ी का कोई व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़कर उनके विषय में पर्याप्त ज्ञान पा सकता है, अपनी दृष्टि विकसित कर सकता है।

पंडित जी की गाँधी जी और गुरु रवीद्रनाथ ठाकुर से निकटता तो जगजाहिर है, पंडित जी से दिनकर जी की कैसी निकटता और आत्मीयता थी, यह तथ्य इस पुस्तक में संकलित इकलौते पत्र में पूर्णता के साथ उभरता है, जो उन्होंने पंडित जी को लिखा पत्र में वर्ष और मास तो अंकित नहीं है, किंतु यह स्पष्ट साक्ष्य है कि यह पत्र दिनकर जी ने तब लिखा था, जब उनकी प्रसिद्ध कृति 'उर्वशी' अपनी अपूर्णता के कारण उन्हें उद्विग्न कर रही थी, उनका स्वास्थ्य बाधाएँ खड़ी कर रहा था और एक बेटी व पाँच भतीजियों के ब्याह चुकने के बाद भी एक बेटी व एक भतीजी को ब्याहने का दायित्व उनकी चिंता के आवरण को नित घनीभूत कर रहा था। इस पत्र में दिनकर जी ने इन सब बातों को इतने खुलेपन और खुले मन से, विस्तार से लिखा, जिन्हें कोई धीर पुरुष किसी अत्यंत विश्वसनीय और आत्मीय व्यक्ति से ही साझा कर सकता है। 1950 में वंशीधर विद्यालंकर को पंडित जी ने जो पत्र लिखा और जो इस पुस्तक में संकलित है, उसमें जनतंत्र के पौध को सींचने के लिए एक संपादक की चिंता और प्रतिबद्धता का प्रमाण तो मिलता ही है, संपादक नामक पीठ के भविष्य को लेकर बड़ी बारीक चिंता भी इसमें स्पष्ट रूप से उभरती है। उसे पढ़कर लगता है कि संपादक संज्ञा की गुणवत्ता का क्षरण उस युग में भी जारी था। पत्र के संचालक तब भी संपादकीय कर्म के महत्त्व को लेकर सीमित समझ रखते थे, आज तो कहना ही क्या! पंडित जी इस पत्र में लिखते हैं–डॉक्टर लोग पाँच–छह वर्ष पढ़ने के बाद डॉक्टरी करते हैं। इंजीनियरों को भी कई साल विधिवत् अध्ययन करना पड़ता है। एकाउंटेंट भी कहीं–न–कहीं शिक्षा पाते है, पर संपादकों की शिक्षा का कोई प्रबंधन नहीं, पत्र–लेखन विधा का अध्ययन करनेवाले छात्रों के लिए तो ये दोनों पत्र बहुत ही उपयोगी हैं। ये पत्र बताते हैं कि पत्र–लेखन क्यों और कैसे साहित्य की एक विधा है? इन दो पत्रों से स्पष्ट होता है कि इन पत्रों में ऐसे तत्त्व और तथ्य होते थे, जो पत्र लिखनेवाले के जीवन–संघर्ष और कर्म–साधना, चिंतन और
चिंता, दृष्टि और दर्शन तथा सामयिक साहित्यिक वातावरण के कई ऐसे साक्ष्य और सूत्र प्रस्तुत करते थे, जिन्हें उसके सृजित साहित्य में नहीं पाया जा सकता और उसके साहित्य के मूल्यांकन के लिए संदर्भ सूत्र देते हैं। ये दोनों पत्र इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं कि पंडित जी का पत्र लेखन की विधा को समृद्ध करने में अतुलनीय योगदान है। पत्र लिखना एक प्रकार से उनका प्रिय रचनाकर्म था। पंडित जी का पत्रकारिता में साक्षात्कार को विधागत समृद्धि देने में भी अप्रतिम योगदान है। इस पुस्तक में डॉ अलका चतुर्वेदी द्वारा लिया गया उनका साक्षात्कार (अंतिम साक्षात्कार) संकलित है। इसमें आठ प्रश्न हैं, जिनके उत्तर में पंडित जी के पत्रकारीय जीवन के आरंभ और उसके विस्तार तथा उनके चिंतन और विचारों के आयामों के सूत्र हैं। पुस्तक में पंडित जी का एक संस्मरण भी है–'प्रेमचंद के साथ अपने दो दिन' जिसके उत्तरार्ध में प्रेमचंद से उनके अनौपचारिक साक्षात्कार का भी अंश है। साक्षात्कार के पाँच घटक होते हैं–पहला प्रश्न, दूसरा प्रश्नकर्ता की मनसा, तीसरा प्रश्नकर्ता की मानसिकता, चौथा संदर्भ और पाँचवाँ विचार–ये पाँचों घटक पंडित जी के साक्षात्कार विधा को पुष्पित–पल्लवित करने के अभियान में खूब प्रतिष्ठित हुए। वे शहीदों की स्मृति के पुरस्कर्ता थे, इसे इस पुस्तक में संकलित अपने आलेख 'शहीदों की स्मृतियों के रक्षक' में कृष्ण प्रताप सिंह ने प्रभावशाली तरीके से पेश किया है। ओरछा राज से पंडित जी का विशेष रिश्ता रहा। 1930 में उन्होंने ओरछा नरेश वीरसिंह जूदेव के आमंत्रण पर टीकमगढ़ जाकर निर्विघ्न व निर्बाध संपादकीय
अधिकारों के प्रति आश्वस्त भाव के साथ 'मधुकर' का संपादन किया। बाद में पत्र बंद हो गया, किंतु वहाँ से उनके रिश्ते का सिलसिला नहीं टूटा। ओरछा के पूर्व नरेश मधुकर शाह के आलेख में इसकी पुष्टि के सूत्र निहित हैं। महात्मा गाँधी से उनकी निकटता, साबरमती आश्रम और फिजी में किये गये उनके कार्यों, शांति निकेतन के प्रति उनका आकर्षण, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रति आदर जैसे विषयों पर इस पुस्तक के आलेखों में पर्याप्त जानकारियाँ हैं। यह पुस्तक न केवल पत्रकारिता, बल्कि साहित्य से जुड़े लोगों और पाठकों के लिए भी उपयोगी है।

संपादक आशुतोष चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली–2

आलेख

शहीद भगत सिंह के विचारों की प्रासंगिकता

दत्तात्रय आसाराम किटाले
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद
मो. 9930441512

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अनेक नेता, राजनेता, चिंतक तथा क्रांतिकारी हुए। इनमें सबसे अलग स्थान शहीद भगतसिंह का रहा है। भगतसिंह को राष्ट्रवादी आंदोलन के सबसे प्रभावशाली क्रांतिकारियों में से एक माना जाता है। इसलिए उन्हें शहीद–ए–आजम अर्थात् शहीद शिरोमणि कहा जाता है। उनका हर एक कार्य देश के लिए समर्पित था। वे अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में सोचते ही नहीं, वे सोचते हैं केवल देश के लिए समाज के लिए आम आदमी के लिए इसी सोच ने उन्हें अमर कर दिया। भगतसिंह का मार्ग क्रांति और बलिदान का रहा। भगतसिंह के चिंतन पर मुख्यतः समाजवादी विचारकों, पाश्चात्य क्रांतिकारियों, समसामयिक विचारकों तथा भारतीय क्रांतिकारियों का प्रभाव पड़ा था। सन् 1917 की रूस की साम्यवादी क्रांति से भगतसिंह काफी प्रभावित थे, साथ ही वे वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक थे। भगतसिंह कार्ल मार्क्स, बाकूनिन, रसेल, अष्टान सिंक्लेयर इन विचारकों का साहित्य पढ़ते थे।

भगतसिंह को जाननेवाले लोगों में से अधिकांश लोग उनको क्रांतिकारी तथा हिंसात्मक धरती पर काम करनेवाले युवक के रूप में ही जानते हैं। भगतसिंह मूलतः विद्रोही थे, लेकिन इसके विपरीत वे एक अच्छे मनुष्य, परम देशभक्त, विचारक तथा एक नेता तो थे ही, साथ में एक उत्कृष्ट लेखक के रूप में भी उनका योगदान अतुलनीय रहा है। भगतसिंह के साहित्यिक प्रेम का उदाहरण उनकी काल–कोठरी में लिखी जेल डायरी है। ''शिव वर्मा ने भगतसिंह द्वारा जेल में अपने अंतिम व असामान्य दिनों में चार पुस्तकों के लिखे जाने की चर्चा की है। इनमें 1. समाजवाद का आदर्श, 2. आत्मकथा, 3. मौत के दरवाजे पर, 4.स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार यह उनकी रचना में प्रमुख पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें सुरक्षित रूप में जेल से बाहर भेज दी गयी थी, पर वे नष्ट हो गयी। भाग्य से स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार के कुछ अंश उन्हीं दिनों उर्दू साप्ताहिक 'वंदे मातरम्' में क्रमशः छपे थे।''[1] इसके अतिरिक्त भगतसिंह ने कुछ महत्त्वपूर्ण लेख लिखे, जिनमें अछूत का सवाल, मैं नास्तिक क्यों हूँ?, विद्यार्थी और राजनीति, बम का दर्शन, भाषा तथा लिपि, सांप्रदायिकता आदि का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इसमें अभिव्यक्त उनके विचार हमें आज भी प्रासंगिक नजर आते हैं।

भगतसिंह का मानना था कि युवावर्ग एक बेहतरीन सोच के साथ राजनीति में आये। अपने 'विद्यार्थी और राजनीति' इस लेख में वे कहते हैं–''विद्यार्थियों से कॉलेज में दाखिल होने से पहले इस आशय की शर्त पर हस्ताक्षर करवाये जाते हैं कि वे पॉलिटिकल कामों में हिस्सा नहीं लेंगे।''[2] उनके इस बात से स्पष्ट होता है कि युवक तथा विद्यार्थी को स्कूल तथा कॉलेज में राजनीति के बारे में पाठ पढ़ाये जाने चाहिए और भविष्य में बड़े नेता बनाने के दृष्टिकोण से हमें बच्चों को पढ़ाना चाहिए। वे ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करना चाहते थे, जो भविष्य में बड़े–से–बड़ा राजनेता बने। वे ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे, जो राजनेता, क्रांतिकारी तथा देशभक्तों का सृजन करें। वर्तमान समय में हमें भी देशहित में काम करनेवाले नेता, क्रांतिकारी और देशभक्तों की आवश्यकता है। आज हमें गुमराह, पथ से भटके तथा स्वार्थवृत्ति के राजनेता अधिकतर दिखाई देते हैं। इन स्थितियों में बदलाव लाते हुए हमें आज डॉ. अब्दुल कलाम, बाबा आमटे जैसे आदर्श नेताओं का निर्माण करना होगा। इस कारण भगतसिंह स्कूल तथा कॉलेज से ही उत्तम राजनीतिक शिक्षा–दीक्षा की कामना करते हैं।

भगतसिंह 'समझौते' को भी राजनीति में एक हथियार के रूप में पेश करते हैं। वे कहते हैं कि, ''हमारे लिए समझौता घुटने टेकना नहीं है, बल्कि एक कदम बढ़ना और कुछ आराम करना है।''[3] भगतसिंह समझौते को कायरता नहीं मानते। जीवन में हमें अनेक बार समझौते को अपनाना पड़ता है, इसका मतलब यह नहीं कि समझौता करना कायरता है। शेर को भी दस कदम की छलांग लगाने के लिए दो कदम पीछे सरकना पड़ता है। असल जिंदगी में हमें भी बहुत से काम समझौते से ही करने पड़ते हैं। आज व्यक्ति, समाज और राजनेता अपनी सुविधानुसार समझौते का उपयोग करते हुए दिखाई देते हैं।

भारत में आज भी धर्म के नाम पर लड़ाई–झगड़े, दंगे–फसाद खड़े होते हैं। धर्म और जाति का आवाहन कर चुनाव में मत माँगे जाते हैं। किसी एक धर्म या जाति का होना दूसरे धर्म तथा जाति के लिए आज भी नफरत पैदा करता है। भारत में आज भी पूरी तरह से ऊँची जाति तथा निम्न जाति का भेद मिटा नहीं है। व्यक्ति बाहर से तो बड़ी–बड़ी बातों के पुल बाँधता है, लेकिन उसके दिल में आज भी निम्न जातियों के प्रति घृणा, द्वेष घर करके बैठे हैं। समाज के यह चित्र दर्शाते हैं कि आज भी जाति और धर्म नाम की चीज हम मानवतावादी कहलानेवाले व्यक्तियों के खून में दौड़ रही है, इसे रोकना हमारा नैतिक कर्तव्य है। धर्म और ईश्वर संबंधी भगतसिंह के विचार सही मायने में हमारी आवश्यकता बन गये हैं। भगतसिंह कहते हैं–''आज सर्वत्र धर्मवाद और ईश्वरवाद ने हाहाकार मचा दिया है, इस मानसिक स्थिति से समाज को बाहर निकालने के लिए खुद को परिवर्तनवादी, प्रगतिशील कहलानेवाला इस मानसिक स्थिति से बाहर आया है क्या?इसका आत्मपरीक्षण करना जरूरी है। अपने आपको अंधश्रद्धा निर्मूलन का कार्यकर्ता कहलानेवाला, प्रगतिशील कहलानेवाला नमाज कैसे पढ़ सकता है।''[4] इस बात से स्पष्ट होता है कि आज धर्मनिरपेक्षता, पुरोगामी तथा प्रगतिशील कहनेवाला व्यक्ति नकाब पहनकर समाज के सामने खड़ा है।

आज मोटे तौर पर मीडिया के गलत निर्णय या व्यवहार के कारण सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिल रहा है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए भगतसिंह कहते हैं–''अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, सांप्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल–मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, सांप्रदायिक बनाना, लड़ाई–झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है।''[5] उनका यह कथन हमें आज भी प्रासंगिक लगता है।

वर्तमान समय में हमें छूत–अछूत इन शब्दों की दीवारें तोड़नी होंगी। मानवता के धर्म को हमें वैश्विक बनाना होगा। जबतक हम सब मनुष्य धर्मनिरपेक्ष विचारों को नहीं अपनायेंगे, तबतक समस्याओं की अंधेरगर्दी अपना काम करती रहेंगी। इसलिए भगतसिंह का मानना है कि ''हम चाहते हैं

कि सब लोग एक समान हो, उनमें ऊँच–नीच, छूत–अछूत का कोई विभाजन न रहे, लेकिन सनातन धर्म इस भेदभाव के पक्ष में है।''[6] देश के ही नहीं, अपितु विश्व के मानव एकसाथ मिल बाटकर खायें,सोये–यह भगतसिंह चाहते थे। ऊँच–नीच का फासला वे नहीं मानते थे। वर्तमान समय में अमीरी नाम की भी एक बड़ी जाति निर्माण हुई है। यह सिर्फ उसी दर्जे के लोगों के साथ उठना–बैठना पसंद करती है, जो उनकी बराबरी के हो यह पाखंड दूर करना है, तो भगतसिंह के विचारों को हमें अपनाना होगा।

भगतसिंह के विचार प्रासंगिक रहने का कारण उनके विचारों का तर्कसंगत होना है। मार्क्सवाद, समाजवाद तथा लेनिन, स्टालिन, क्रोपोटकिन आदि के विचार उन्होंने ऐसे ही नहीं माने, इसके लिए उन्होंने गहरा चिंतन–मनन किया, उसके बाद ही उन विचारों का स्वीकार किया। वे कहते हैं–''हम जनता का ध्यान इतिहास में बार–बार दोहराए गये इस सबक की ओर दिलाना चाहते हैं कि गुलामी और बेबसी से कराहती जनता को कुचलना आसान है, परंतु विचार अमर होते हैं।''[7] उनका कहना स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति की हत्या करना आसान है, लेकिन विचारों को तो कोई खत्म नहीं कर सकता। किसी विचार को मानने से पहले हमें उसका तर्कसंगत अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

शहीद भगतसिंह देश में समता, बंधुता और प्रेम का राज चाहते थे। स्वतंत्रता पूर्व काल में भी वैसा नहीं हो सका और आज भी परिस्थितियाँ बंधुभाव और समता के विपरीत ही दिखाई देती हैं। आज भी शोषक–शोषित परंपरा अपना काम कर रही है। गरीब अधिक–से–अधिक गरीब होता जा रहा है, तो दूसरी ओर अमीर और अधिक अमीर बनता जा रहा है। गरीबी–अमीरी में यह जो दरार है, वह हर क्षण बढ़ती जा रही है। जनता को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए हमें उनमें वर्ग–चेतना निर्माण करने की आवश्यकता है। भगतसिंह का मानना है कि ''गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति है, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए।''[8] पूँजीपति वर्ग वर्तमान समय में भी गरीब एवं मेहनतकश लोगों को आपस में लड़ाकर अपना उल्लू सीधा कर रहा है। इन गरीबों के दिलों में वर्ग–चेतना की मशाल जलनी चाहिए, तब वह उसके प्रकाश में पूँजीपतियों का असली रूप पहचान पायेंगे। उनका कहना है कि विश्व का सबसे बड़ा पाप क्या है?तो वह गरीब होना है। संसार के सभी गरीबों को चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों अधिकार एक ही है। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ। आज हमें स्वतंत्रता मिल गई, लेकिन उसका फायदा आज भी 80 प्रतिशत समाज को नहीं हो रहा है। भगतसिंह कहते हैं कि वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है जब लोग परस्पर घुल–मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जाएँगे। आज हम आजाद तो हो गये हैं, परंतु हमें मानसिक तथा बौद्धिक गुलामी के लिए तैयार किया जा रहा है।

भगतसिंह के क्रांतिकारी विचारों का उद्देश्य ही मूलत: सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन था। इस परिवर्तन की हमें आज भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी उस वक्त थी। उनके विचार क्रांति और संघर्ष के साथ धैर्यपूर्ण अवस्था में किस तरह लड़ना चाहिए, इसकी आज भी हमें प्रेरणा देते हैं। वे कहते हैं– क्रांति के लिए बम की आवश्यकता नहीं होती, वह तो विचार पर आधारित होती है। देश के युवावर्ग को भगतसिंह के विचारों को जानने की आज सही मायने में आवश्यकता है। बहुत कम युवा वर्ग जानता है कि भगतसिंह एक बड़े चिंतक तथा विचारक थे। उनके विचार प्रगतिशील होने के कारण पूँजीपति और साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध है। इस कारण उच्च वर्ग उनके विचारों को सामने लाने से खतरा महसूस करता है। आज के हमारे अनेक प्रश्नों के उत्तर हम भगतसिंह के विचारों में खोज सकते हैं। हमें कुछ व्यावहारिक कार्य करने की आवश्यकता है। इसलिए भगतसिंह कहते हैं–''एक ही व्यावहारिक काम हजारों किताबों और पत्रिकाओं से अधिक प्रचार कर देता है।''[9] उनके इस कथन से स्पष्ट है कि कोई व्यावहारिक कार्य हम करते हैं, तो वह किसी किताब तथा पत्रिका से अधिक प्रचार कर जाता है।

भगतसिंह 'वसुधैव कुटुंबकम्' के पुरस्कर्ता थे। वे समस्त मनुष्यवर्ग को शांति का संदेश देते हैं। आज हमारे आस–पास ऐसे कई व्यक्ति है, जो मानवतावादी विचारों की मिसाल है। ऐसा होने के बावजूद हम क्यों किसी जाति, धर्म, मनुष्य, समाज, देश को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हैं, यह बात अब भी समझ में नहीं आती। हमें कदम से कदम मिलाकर चलना होगा और सबके सुख–शांति की कामना करनी होगी। सबको समानता का अनुगामी बनना होगा, तभी हम वैश्विक शांति की ओर बढ़ सकेंगे। वे कहते हैं कि ''हम मानवीय जीवन को इतना पवित्र मानते हैं कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम किसी को चोट पहुँचाने के बजाय मानव जाति की सेवा के लिए अपने प्राण देने को तत्पर हैं।''[10]

वर्तमान समय में लोग खून के प्यासे हो गये हैं, अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद को पार करते हैं। इससे बचने के लिए हमें मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। कुछ लोग आज भी आतंक फैला रहे हैं, उन्हें अपना कार्य त्यागकर मनुष्य जीवन की पवित्रता को समझते हुए मानव जाति की सेवा करनी चाहिए। हम
आज झूठी शांति नहीं चाहते, बल्कि सच्चे अर्थों में हमें शांति चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से हम समझ सकते हैं कि केवल भगतसिंह का चरित्र ही नहीं, अपितु हमें उनके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मानवतावादी, क्रांतिकारी, धर्मनिरपेक्ष विचारों की आज भी बड़ी मात्रा में आवश्यकता है। भगतसिंह का चरित्र और अमूल्य विचार आज के युवाओं के लिए भी आदर्श एवं प्रेरणादायी सिद्ध हो सकते हैं। इस दृष्टि से भगतसिंह के विचारों
का अनन्य साधारण महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

संदर्भ संकेत–

1. सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज, वीरेंद्र सिंधु, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6, संस्करण–2012, पृ. 88 2. भगतसिंह के विचार, डॉ. पदमा लक्ष्मी, नवप्रभात साहित्य, श्याम भवन, यमुना विहार, दिल्ली–100053, संस्करण–2012, पृ. 54
3. वही, पृ. 116
4. शहीद भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष विशेषांक, डॉ. प्रा. राम बाहेती, खोकडपुरा, पैठण गेट, औरंगाबाद, पृ. 15
5. भगतसिंह के विचार, डॉ. पदमा लक्ष्मी, नवप्रभात साहित्य, श्याम भवन, यमुना विहार, दिल्ली– 10053, संस्करण–2012, पृ. 48
6. मृत्युंजय भगतसिंह, राजशेखर व्यास, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2010, पृ. 191
7. अमर शहीद भगतसिंह, विष्णु प्रभाकर, आर्य प्रकाशन मंडल, गांधीनगर, दिल्ली– 110031, संस्करण–2012, पृ. 55 8. भगतसिंह के विचार, डॉ. पदमा लक्ष्मी, नवप्रभात साहित्य, श्याम भवन, यमुना विहार, दिल्ली– 10053, संस्करण–2012, पृ. 48
9. वही, पृ. 28
10. अमर शहीद भगतसिंह, विष्णु प्रभाकर, आर्य प्रकाशन मंडल, गांधीनगर, दिल्ली– 110031, संरकरण–2012, पृ. 61

आलेख

बुन्देली काव्य में समाज का सच

डॉ. अवधेश कुमार चन्सौलिया
दीनदयालनगर, ग्वालियर (म.प्र.)
09425187203

बुन्देली भूभाग के अन्तर्गत विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के झाँसी, हमीरपुर, जालौन, ललितपुर, बाँदा जिले और मध्यप्रदेश के दतिया, टीकमगढ़, पन्ना छतरपुर, दमोह, सागर जिले सम्मिलित किये गये हैं। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के ये सभी जिले विकास की दृष्टि से अभी भी पिछड़े हुए हैं। सड़क, जल और बिजली की दृष्टि से ही नहीं, अपितु शिक्षा, स्वास्थ्य और औद्योगिक दृष्टि से भी यह क्षेत्र अभी कोसों दूर है।

आज भी यहाँ पूँजीवादी और सामंतवादी प्रथा का बोलवाला है। निर्धनता और अभावों के कारण यहाँ के बीहड़ डाकुओं की प्रिय शरण–स्थली है।

शिक्षा के अभाव के कारण अत्याधुनिक युग में भी यहाँ के लोग सामाजिक अंधविश्वासों, कुरीतियों, परम्पराओं एवं बुराइयों के पोषक बने हुए हैं। आपसी ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, स्वार्थ एवं प्रतिकार की भावना के कारण लोग अपने एवं दूसरों के जीवन को नारकीय बनाये हुए हैं। निर्धनता को भाग्य मानकर स्वीकार करनेवाले ये लोग आगे बढ़ने का प्रयास ही नहीं करते। निर्धनता और अभावग्रस्त जीवन का यह सिलसिला जगनिक काल से ही चला आ रहा है। पृथ्वीराज चौहान एवं महोबा के सम्राट परमाद्रिदेव के युद्ध में बुंदेलखण्ड के किसानों की फसलें तो बर्बाद होती ही थीं, युद्धों के कारण साधारण जन–जीवन भी प्रभावित होता था। जगनिक कहते हैं कि पृथ्वीराज की सात लाख सेना ने महोबे पर आक्रमण कर दिया, अतः

''ऐसे समय परौ महुवे पै, विपदा कछू कही न जाय।
रोबे रैयत चन्देलों की हा हम कौन देश भग जाय।।''[1]

ईसुरी के समय भी कमोवेश यही स्थिति थी। युद्ध तो इतने नहीं थे, परन्तु प्राकृतिक उत्पात तो कम नहीं थे–

''पर गये एई साल में ओरे, कऊ भौत कऊँ थोरे
कैसे जिये गरीब गुसइयाँ, छिके अन्न के दौरे।''[2]

इतना ही नहीं, कभी फसल को गिरुआ रोग लग जाता है, तो कभी ओलों से पकी पकाई फसल नष्ट हो जाती है। हाँ, ईसुरी के अनुसार सम्वत् 1856 में जरूर बुंदेलखण्ड में तिली की भरपूर पैदावार हुई थी, लेकिन जिन लोगों ने उस समय तिली बोई थी, उन्हीं को लाभ हुआ था। लेकिन यहाँ तो आज भी लाखों लोग भूमिहीन हैं। उन्हें तो हमेशा ही अकाल जैसा सामना करना पड़ता है। छोटे–छोटे जो किसान हैं, वे प्रकृति के अधीन हैं। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी है। यहाँ का किसान सदैव डरा सहमा और संशयग्रस्त रहता है। क्योंकि–

''स्यारी में सूखा पर गऔ तो, ऊ में कछू न पाऔ
बीज साव को धरौ चुकावे दानो लौ न आऔ।''[3]

उसे ऋण की चिंता तो है ही, साथ ही चिंता है रमकुइया की शादी की, छितिया के चलाव की। साल भर हो आया पत्नी को ब्लाउज नहीं बनवा पाया, स्वयं की धुतिया फट गयी है, लड़के को बुखार चढ़ा है। रोटी मिल गयी, तो दाल नहीं है और यदि दाल मिल गयी, तो रोटी नहीं है। ऐसी करुण कहानी है बुंदेलखण्डियों की। इन सब दुर्दशाओं के बावजूद इन लोगों में गजब का आत्मसंतोष है, स्वाभिमान है–

''अधर दुफर लो जौ मिल जावै, रूखी सूखी खाई।
सादा गाँव के जीवन में भरभूर से रहें।''[4]

सामन्तशाही कागजों पर तो समाप्त हो गयी, लेकिन अब वह नवीन रूप धारण करके और भी विद्रूप और विकराल हो गयी है। मंत्री, नेता, अफसर, पुलिस एवं धनिक वर्ग, ये नये युग के सामन्ती चेहरे हैं। ये सब मिलकर आमजन का शोषण कर रहे हैं। ये लोग डकैतों के पोषक हैं। इनके अत्याचारों के कारण ही लोग विद्रोही होकर डाकू बन जाते हैं। रानी लक्ष्मीबाई ने बरजोरा डाकू का हृदय परिवर्तित कर अपनी फौज में सम्मिलित कर लिया था और वह फिर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा। विनोबाजी व जयप्रकाश जी ने भी यहाँ के डाकुओं को समाज की धारा में वापस मोड़ने का सराहनीय प्रयास किया; लेकिन आधुनिक प्रजातंत्र के जननायक उनसे बूथ कैप्चरिंग कराते हैं, विरोधियों का दमन कराते हैं, उन्हें हथियार प्रदान करते है। नेता, अफसर और ठेकेदारों के गठजोड़ ने भ्रष्टाचार को चरम पर पहुँचा दिया है। इस भ्रष्टाचार के कारण बुंदेलखण्ड का विकास जितना और जिस तेजी से होना चाहिए था, नहीं हो रहा है। फलतः अभी भी फलस्वरूप यहाँ गरीबी का साम्राज्य है। इसी कारण प्रजातंत्र से लोगों का विश्वास उठ गया–

''प्रजातंत्र घोखो लगे, 'इंदु' कैबे चोखी
माटी मिलौ सुदेश, मर गई जनता भूखी।''[5]

इसी तरह –

''भूखी सब जनता मरै, नेता गोल मटोल
चींथ चींथ के देश खों, करतई पोलम पोल।''[6]

वर्तमान में मूल्यों का ह्रास बहुत तेजी से हो रहा है। दहेज की भयावहता जगजाहिर है–

''काट रओ दहेज को बिच्छू, पीडित हो रओ–सकल समाज।''[7]

शोषण और अत्याचार की चक्की में तो यहाँ की जनता युगों युगों से पीसी जा रही है। यथा–

''तुरकन ने तिली सी अकोर लई, गोरन ने गगरी सी बोर लई अब अपने भारत के भैंयन ने परजा कों बिरिया सी झोर लई
दओ उसेय पुलिस की पतीली नें..
लओ उधेर मुसफी तसीली नें
लील्हे सब लेत हैं किसानईं कों
चीथ खाव जजी ने बकीली नें
मका जैसी अडिया बिथोर लई,
सहद की छतनियाँ सी टोर लई।''[8]

डाकूग्रस्त क्षेत्र होने से यहाँ के कवियों का यान इस समस्या की ओर कुछ अधिक ही गया है। यहाँ के लोग सदैव ही बन्दूकों और संगीनों के साये में दहशत भरी जिंदगी जीने पर मजबूर है–

''गैल–गैल अब तो बिछी है बारूदी रेत
बन्दूकन के गाँव है, कारतूस के खेत

करत ड़ाकुऊन को सदा कारतूस जो सैल,
बेई बनत अब गाँव में, मुखिया पंच पटल।''[9]

वर्तमान राजनीति ने समाज को वोटों की खातिर जातियों और वर्गों में विभाजित कर दिया है। चुनावों में इसी कारण हिंसा होने लगी है। एक साथ रहनेवाला बुंदेली समाज अब पार्टियों में बँट गया है। बुंदेली कवि ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है–

''हिरकन लगत हुलास जब, बढ़न लगत है हेत
वोट बैंक की मिसमिसी रंत और कत देत।''[10]

नेताओं ने वोट तो लिए, परन्तु उनकी आर्थिक बदहाली पर कोई ध्यान नहीं दिया। यहाँ के अनपढ़ और गरीब लोग अपना वोट, केवल एक बोतल देशी शराब में या एक धोती में दे देते हैं। वे अभी भी भूमिहीन हैं। ये मजदूरी करने हेतु अभिशप्त हैं–

''भुंसारे से गये खेतन में सइयां करन मजूरी
एक मेड़ कोऊँ मोनो होती, इच्छा होती पूरी।''[11]

उन्हें मजदूरी भी सरकारी दरों के अनुसार नहीं मिलती, कुछ लोग थोड़ी–सी राशि दे देते हैं, तो कुछ लोग यों ही बेगार करा लेते हैं–

''बारा सोरा पास सड़क पै लगे मंजूरी कर रए।''[12]

चुनावी घोषणा पत्रों में नेता लोग भूमिहीनों को भूमि देने की लम्बी–लम्बी बातें करते हैं, परन्तु सत्ता में आते ही वे सब वायदे भूल जाते हैं। यदि भूमिहीनों को जमीनें मिलती भी
हैं, तो या तो वे बंजर होती हैं या प्रभावशाली लोगों के कब्जेवाली होती हैं। अतः इस तरह उस जमीन का कोई मतलब नहीं होता। भूमिहीनों की इस भावना को कविता में इस तरह व्यक्त किया गया
है–

''एक बनी कानून सनततें सब खो खेती मिल जै
हम खों मिल जै एक टपरिया करम हमाओ खुल जै
सिरकारउ की झूठी बातें का विश्वास कऊँरी।''[13]

बढ़ती हुई महँगाई भूमिहीनों के लिए कोढ़ में खाज सिद्ध हो रही है। मँहगाई के कारण स्थिति यह हो गयी है कि–

''उतै लगत अब एक रूपइया, जिते लगत ती पाई
काँ की होरी, काँ को होश, कलजुग परौ सबई पै तोरा
दार उधार मुहल्ला भर की, अब नौ नई
चुकाई काँसे ले आव तिरकाई।''[14]

इस मँहगाई और गरीबी के कारण लोगों में हताशा का भाव घर कर गया है। ऊँच–नीच, छुआछूत और असमानता के कारण लोगों में ईर्ष्या, द्वेष, बैर के भाव जाग्रत हो गये हैं। डाकुओं से मिलकर लोग विरोधियों का अपहरण करा रहे हैं, डकैती डलवा रहे हैं और दूसरे के दुःख से प्रसन्न हो रहे हैं, जबकि पहले ऐसा नहीं था। अब मूल्यों का ह्रास तेजी से हो रहा है। अब वातावरण बहुत विषाक्त हो गया है–

''अब कौनऊ नईं पूँछतई, इक दूजे की खैर
कुलियन कुलियन में मिलै, द्वेष ईर्ष्या बैर
फसे लोग लालच सबई, नई इच्छन को अंत
अफसर नेता चोर हैं, आज देश के संत।''[15]

बुंदेलखण्ड में आज भी हरिजन, सवर्णों के सामने अपनी खटिया और घोड़े पर नहीं बैठ सकता, उनके समक्ष जूते नहीं पहन सकता। बहुत–से गाँवों में यह स्थिति अभी भी है––

''हरिजन जिनकों कहत खाट में अभऊँ न बैठे,
नई उठे तो रामइँ जानै कित्ते जूत परें।''[16]

पुलिस के अत्याचार ऐसे हैं कि जिनके यहाँ डकैती पड़ती है, पुलिस उसी को पकड़कर, उसपर डकैतों को आश्रय देने का इल्जाम लगाकर बंद कर देती है–

''बा दिन देखी नई गाँव में गई डकैती पर
जिन पै परी उनई को उल्टे ले गई पुलिस पकर।''[17]

यह है इस स्वतंत्र भारत के बुंदेलखण्ड की तस्वीर। यह संयुक्त बुंदेलखण्ड आज भी उसी सामन्ती मानसिकता में जी रहा है। विकास का, शिक्षा का, समानता का यहाँ नामोनिशान नहीं है। इन सब सुविधाओं का लाभ केवल धनिक वर्ग तक ही सीमित रह गया है। साधारण जन आज भी बदहाल है। बुंदेलखण्ड को स्पेशल पैकेज देकर इसकी समस्याएँ नहीं सुलझ सकती। इसकी समस्या का समाधान पृथक् बुंदेलखण्ड राज्य बनने पर ही होगा।

संदभ–

1. सं. कैलाश मडवैया, बुंदेली के प्रतिनिधि कवि, मनीष प्रकाशन, भोपाल, 1995 पृ. 11, कवि जगनिक।
2 सं. घनश्याम कश्यप, ईसुरी की फागें, शब्दपीठ–इलाहाबाद, 1997 पृ. 132, कवि ईसुरी।
3. सं. अशोक शर्मा, बुंदेली भाषा और साहित्य, म.प्र. हिं. ग्रं. अकादमी, भोपाल 2006. पृ. 85, कवि संतोष सिंह बुंदेला।
4. वही, पृ. 88 कवि संतोष सिंह बुदेला।
5. सं. श्याम बहादुर श्रीवास्तव, ठनी साँप नौरा में, सर्वोदय साहित्य संगम मिहोना (भिण्ड) म.प्र. 2004, पृ. 27, कवि रामेश्वर प्रसाद गुप्ता।
6. वही, पृ. 27 कवि रामेश्वर प्रसाद गुप्ता।
7. सं. कैलाश मडवैया, बुंदेली के प्रतिनिधि कवि, मनीष प्रकाशन, भोपाल, 1995, पृ. 65, कवि मुशीलाल पटेरिया,
8. स. श्याम बहादुर श्रीवास्तव, ठनी साँप नौरा में, सर्वोदय साहित्य संगम मिहौना (भिण्ड) म.प्र. 2004, पृ. 23, कवि शिवानंद मिश्र बुंदेला।
9. वही पृ. 39, कवि रसूल अहमद सागर।
10. वही, पृ. 39, कवि रसूल अहमद सागर।
11. वही, पृ. 40, कवि रसूल अहमद सागर।
12. वही, पृ. 40, कवि रसूल अहमद सागर।
13. वही, पृ. 40, कवि रसूल अहमद सागर।
14. सं. कैलास मडवैया, बुंदेली के प्रतिनिधि कवि, मनीष प्रकाशन, भोपाल 1995, पृ. 25, कवि जगदीश सहाय खरे।
15. सं. श्याम बहादुर श्रीवास्तव, ठनी साँप नौरा में, सर्वोदय साहित्य संगम, मिहौना (भिण्ड) म.प्र. 2007, पृ. 27 कवि रामेश्वर प्रसाद गुप्ता।
16. वही, पृ. 46, कवि विजय सिंह पाल।
17. वही, पृ. 46, कवि विजय सिंह पाल।

आलेख

विश्व साहित्यशास्त्र की प्रकल्पना

डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय
शिवपुरी, अलीगढ़ (उप्र.)
मो.–9897452431

वैश्विक स्तर पर विश्व के समस्त देश विभिन्न भाषाओं, धर्मों, सम्प्रदायों जातियों, वर्गों,आस्थाओं, विश्वासों एवं मान्यताओं की विविधता से जुड़े हुए हैं। वास्तव में विश्व भावना के स्तर पर, विचार और आदर्श के स्तर पर, मानसिक विकास के स्तर पर, पारस्परिक सौहार्द के स्तर पर, सूझ–बूझ तथा वैज्ञानिक सोच के स्तर पर किसी न किसी रूप में सभी देशों से जुड़ा हुआ है। मानव संवेदनात्मक प्राणी है जिसमें कल्याण, परोपकार, अहिंसा, दया, करुणा, सहानुभूति, विनम्रता, क्षमा, स्नेहादि की जो भावना निहित है, उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम अपने–अपने देश की सभी की अलग–अलग भले ही भाषाएँ हैं, लेकिन विचार के स्तर पर, मानव कल्याण के स्तर पर, विश्व शांति के स्तर पर सभी में समान प्रवृत्ति देखी जा सकती है। भारतीय वेद, उपनिषद्, गीता, गुरुग्रंथ साहब, बाइबिल आदि सभी में उच्च मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं मानवीय संवेदनाओं के तत्त्व विद्यमान हैं। गुरुओं की वाणी हो या बाइबिल का संदेश या गीता का उपदेश या कुरान शरीफ का पैगाम, समाज सुधारकों का सद् सुझाव हो या साहित्यकारों की सद्शिक्षा सभी मानव को भावनात्मक स्तर पर एक सूत्र में जोड़ते हैं।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्व के सभी देश किसी–न–किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। रोजी– रोजगार से, उद्योग–धन्धों से, वाणिज्य व्यापार से, शिक्षा–दीक्षा से, वस्तुओं के आयात–निर्यात से सभी देश सम्बद्ध हैं। विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य में लगभग एक–सा चित्रण मानवीय संवेदना का हुआ है। वैश्विक संस्कृति समन्वयवादी संस्कृति है, मानवीय संवेदनात्मक संस्कृति समन्वयवादी संस्कृति है। कितने ही युग व्यतीत हो गए, संकट के कितने ही दौर विश्व पर आए, दो–दो विश्व युद्ध हुए, प्लेग जैसी महामारी का विश्व शिकार हुआ, फिर भी वैश्विक संस्कृति एक विरासत के रूप में ज्यों–की– त्यों बनी हुई है। विश्व में अनेक संस्कृतियाँ आईं, पनपीं, उनका क्षेत्र विस्तार भी हुआ, लेकिन वैश्विक संस्कृति में वे समय के अरसे विलीन हो गई। वैश्विक संस्कृति का सतत अविच्छिन्न प्रवाह निरन्तर विकास के नए आयाम प्रस्तुत करते हुए, निर्मित करते हुए आगे बढ़ता ही रहा है।

विश्व के सभी देशों के रीति–रिवाज, परम्पराएँ, प्रथाएँ, पर्व–त्योहार, चाहे होली, दीपावली, दशहरा या रक्षाबंधन हो, चाहे वैशाखी या गुरुनानक दिवस हो, चाहे क्रिसमस डे, गुड फ्राइडे या इस्टर का त्यौहार हो, चाहे ईद, बकरीद या मोहर्रम हो, सभी अपनी–अपनी विविधताओं के साथ–साथ कहीं–न–कहीं भाईचारे का, एकता का, सौहार्द एवं मानवता का संदेश देते हैं। सभी देशों की वेषभूषा, खान–पान, रहन–सहन, आचार, भाषायी विभिन्नता आदि में अन्तर देखा जा सकता है, लेकिन विचारतत्व, जीवनशैली, सोचने–समझने की प्रवृत्ति एवं साहित्यिक रुचि–रुझान में लगभग समान प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।तीर्थाटन
की महिमा, धार्मिक गरिमा, परोपकार की महत्ता, पारस्परिक प्रेम स्नेह, सौहार्द–सहानुभूति आदि विषयक सोच करीब–करीब सभी देश के नागरिकों की समान ही होती है। हम सभी विश्व संस्कृति के अंग हैं, विश्व के नागरिक हैं–यही भावात्मक एकता का मूर्त रूप वैश्विक संस्कृति में देखा जा सकता है। यह वह भावभूमि है, जहाँ पर वैश्विक सामाजिक संस्कृति साकार हो उठती है। इन्हीं तत्त्वों का समाहार वैश्विक साहित्य में भी देखने को मिलता है।

वैश्विक स्तर पर भाषाई विविधता के बावजूद वैचारिक धरातल पर उसमें एक रूपता, समरूपता ही विद्यमान है, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में हुई है। अरब–इजराईल का संघर्ष महात्त्वाकांक्षा का परिणाम था। चीन के क्षेत्रविस्तार को घृणित नीति की निंदा अमेरिका, संयुक्त राष्ट्र आदि अनेक देश कर रहे हैं। पाकिस्तान की आतंकी गतिविधियाँ विश्व मानवता के लिए खतरा बनी हुई हैं, जिसके कारण पाकिस्तान और चीन दुनिया से अलग–थलग पड़ गए हैं। औद्योगिक और कम्प्यूटराइज्ड उन्नति के परिणामस्वरूप कुछेक वैश्विक देशों की राजनीतिक गतिविधियों में भी वृद्धि हुई हैं। वे देश अपनी महात्त्वाकांक्षाओं, आशाओं एवं एषणाओं की पूर्ति हेतु पड़ोसी देशों में अपना क्षेत्र विस्तार चाहते हैं जिसकी पूर्ति न होने पर असंतोष बढ़ा है और युद्ध के काले बादल मंडरा रहे हैं, जो विश्व संगठन और विश्व स्वास्थ्य के लिए सही नहीं है। विश्व के कुछेक देशों में विघटनकारी–विध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगी हैं। अलगाववादी, अराजकतावादी एवं आतंकवादी प्रवृत्तियों से विश्व आज ग्रसित है। विश्व के समक्ष सम्प्रति अनेक विकट समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनमें आतंकवाद, आर्थिक मंदी, पूँजीनिवेश, जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संकट आदि को लिया जा सकता है। मानव अस्तित्व का भी संकट आज वैश्विक स्तर पर उत्पन्न हो गया है, जिसे चुनौती के रूप में स्वीकार करना होगा। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 17 जुलाई, 2020 को संयुक्त राष्ट्र के उच्च स्तरीय सत्र को आर्थिक और सामाजिक स्तर पर सम्बोधित किया, जो वैश्विक चिंता को दर्शाता है। भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का अस्थाई सदस्य का चुनाव जीत लिया है। अतएव 2021–2022 के लिए भारत निर्वाचित हुआ है। 'इंडिया ग्लोबल वीक' को ब्रिटेन में श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 9 जुलाई, 2020 को सम्बोधित किया है। वैश्विक मामले में भारत नेतृत्व की केन्द्रीय भूमिका में है, जो प्रत्येक भारतीय को गौरवान्वित करता है। कोविड–19 के साये में भारत प्रतिभाओं और तकनीकी ज्ञान का भंडार बनकर उभरा है, जिसके मूल में मोदी जी की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की नीति है। अद्यतन वैश्विक परिवेश में बदलती हुई मान्यताओं, अवधारणाओं एवं आस्थाओं को भी वैश्विक साहित्यशास्त्र के माध्यम से सामाजिक
उत्थान और उच्चमानवीय मूल्यों की रक्षार्थ नव्य दिशा में मोड़ने की महती आवश्यकता है। मानवीय संवेदनात्मक धरातल पर वैश्विक साहित्यशास्त्र की निर्मिति परमावश्यक है, ताकि विश्व समाज को नई ऊर्जा मिल सके और वैश्विक साहित्यशास्त्र से विश्व लाभान्वित हो सके। अन्याय, शोषण, आतंकवाद, प्रदूषण आदि के अंधकारमय वातावरण में न्याय, समता, ममता, सौहार्द आदि के परिप्रेक्ष्य में आशा की ज्योति सम्प्रति प्रज्वलित करने की आवश्यकता है।

वैश्विक साहित्यशास्त्र द्वारा विश्व की नई होनहार पीढ़ी को स्नेह, प्रेम, सौहार्द एवं सहानुभूति के जल से सींचकर उन्हें उज्ज्वल भविष्य की दिशा में उन्मुख करने की आवश्यकता है ताकि विश्व मानवता की स्थापना हो सके। नई युवा पीढ़ी ही विश्व का भविष्य है, आशा–आकांक्षा है एवं विश्व के भावी कर्णधार भी
इसी युवा पीढ़ी से निकलेंगे। विश्व के सभी नागरिकों का उत्तरदायित्व है कि

उन्हें अच्छे संस्कार दिलाएँ, उन्हें सत्साहित्य पढ़ने को प्रेरित करें तथा सामाजिक परिवर्तन एवं उत्थान के संदर्भ में सर्वांगीण विकास का अवसर प्रदान करें। यह तभी सम्भव होगा, जब विश्व अपनी प्राचीन गौरवशाली परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को नई युवा पीढ़ी को सौंपे, ताकि वैश्विक साहित्यशास्त्र के प्रति उनके मानस में अनुराग उत्पन्न हो सके। वैश्विक साहित्यशास्त्र की पवित्रधारा निरन्तर प्रवाहमान होकर विश्व को अपने मूल्यों से सिंचित करती रहेगी।वैश्विक साहित्यशास्त्र को अधिष्ठित और प्रतिष्ठित करने के लिए संकल्प लेने की सम्प्रति आवश्यकता है।

विश्व वाङ्मय में संकल्प की प्रतिष्ठा करने से ही सृजनशील चैतन्य की प्राप्ति सम्भव है।

वस्तुतः समस्त सृष्टि संकल्पमूलक है। संकल्प मूलतः मानवीय होते हैं और सर्जनात्मक होते हैं। कहा गया है कि 'संकल्प' आध्यात्मिक तत्त्व है, सृजनशील चैतन्य है। इस संकल्प की संवृत्ति और विवृति दो रूप हैं। संवृत्ति अवस्था में यह शुद्ध चेतना है, जो समस्त सर्जना को अपने में संजोए रखता है और संकल्प करते ही

वह चेतन घनीभूत होकर भूतादि पदार्थों के रूप में विवृत्ति को प्राप्त हो जाता है, जिसे हम सृष्टि कहते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार की सर्जना में संकल्प की अहम भूमिका होती है। साहित्य सर्जना भी संकल्प का ही परिणाम सिद्ध होगी। मानव–मानस को भी चिंतकों ने संकल्पनात्मक माना है। अभिनव गुप्त ने संकल्प को विमर्श के अर्थ में लिया है, क्योंकि यह विमर्श शिव का संकल्प है, उसकी शक्ति है, उसका स्वातंत्र्य है। इस संकल्प के कारण ही शिव 'शिव' हैं, अन्यथा वे शव होते। यह संकल्प शिव का सर्जनात्मक रूप है, उसका वैभव है। 'विश्वात्मनों विकल्पना प्रसरेऽपि महेशता' अर्थात् यह समस्त विश्व शिव का वैभव है। इसी से वह विश्वात्मा बनता है। संकल्प शक्ति शिव का स्वरूप है। इस प्रकार समस्त ज्ञान की सम्यक् अभिव्यक्ति इस संकल्प तत्त्व द्वारा ही होती है। जिसकी चरम परिणति साहित्यशास्त्र है। नित्थे ने मानव संकल्प को अस्तित्व की सृजनात्मक चेतना की जीवंतता के रूप में स्थापित किया है। साहित्यकार का अन्तःकरण जब संकल्पमय होता है, तभी वह साहित्य सृजन करता है।

भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में प्रतिपादित साहित्य शास्त्र का निर्माण किया जा सकता है, जिसे वैश्विक या विश्व साहित्यशास्त्र भी कह सकते हैं। विश्वसाहित्य, विश्वसंस्कृति, विश्वदर्शन, विश्ववाङ्मय आदि इसी प्रकार की मान्यताएँ और अवधारणाएँ हैं। संस्कृति, दर्शन, साहित्य आदि का घनिष्ठ संबंध देश, काल एवं परिस्थिति विशेष से होता है। किसी भी देश विशेष के साहित्य, संस्कृति या दर्शन को प्रभावित करनेवाले तत्त्व

और कारक उस देश की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के तत्त्व ही हैं, जो उन्हें प्रभावित करते हैं। कार्ल मार्क्स (1818–1883) ने साहित्य अथवा कला की प्रकृति और प्रवृत्ति को द्वन्द्वात्मक मानते हुए साहित्य को परिभाषित किया है। साहित्य या कला का उद्गम विशेष स्थिति और परिस्थिति में भले ही होता है, लेकिन उसकी परिणति सदैव सामान्य में होती है, तभी वह सार्वकालिक और सार्वभौमिक बनती है।

साहित्य का मूल धर्म आधुनिक साहित्य चिंतकों ने सार्वभौम की परिणति ही माना है। विश्व साहित्यशास्त्र की परिकल्पना आलेख में डॉ. नगेन्द्र ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि ''साहित्य अथवा कला के उपादान कारणों में देशकाल सापेक्ष तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं, जो देशकाल निरपेक्ष है। विशेष उपादानों में ही सार्वभौम तत्त्व अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं और ये रचना प्रक्रिया में संलग्न कलाकार की प्रतिभा के संपर्क से व्यक्त होकर कलाकृति को रूपायित कर देते हैं। साहित्य शास्त्र के व्यापक दृष्टिकोण में सिद्धांत और रीति–दो अंग माने गए हैं। सिद्धान्त के अन्तर्गत साहित्य का स्वरूप, साहित्य का प्रयोजन, प्रेरक तत्त्व या कारक, सर्जन प्रक्रिया या सृजनशीलता,

साहित्यानुभूति का स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया आदि का तात्त्विक विवेचन किया जाता है, जबकि रीति के अन्तर्गत रूपगत भेद, अभिव्यंजना के उपकरण, पद रचना, अलंकार, वक्रप्रयोग आदि का प्रतिपादन किया जाता है।''

रचना विशेष के आधार पर सिद्धान्त और रीति का निर्धारण होता है, जिसके मूल में साधारणीकरण की अहम् भूमिका होती है। साहित्यकार किसी भी कृति या रचना विशेष में अपनी वृत्ति के अनुसार ही उसमें साधारणीकरण की प्रक्रिया लागू करता है। वह रचना से विशिष्ट उपकरणों का सामान्यतः उपस्थापन कर उनके प्रत्यक्ष, इन्द्रियात्मक रूप को संवेद्य बनाता है अर्थात् उसे भावकल्पना गम्य बना देता है। साहित्यिक रूपों के आधार पर ही शास्त्रज्ञानी शास्त्र के भवन की निर्मिति करता है। प्रत्यक्षतः विशिष्ट होते हुए भी साधारणीकरण की प्रक्रिया से उसे गुजरना पड़ता है, ताकि रचना या कृति विशेष सार्वभौमिकता के फलक पर खरी उतर सके। साहित्यकार साहित्यिक रचना रचकर धन्य हो जाता है, वहीं पर शास्त्रकार उस वर्ग के अनेक साहित्यिक रूपों का अन्वयव्यतिरेक पद्धति से विवेचन–विश्लेषण करता है। साथ ही उनमें निहित तत्त्वों के संश्लेषण द्वारा सामान्य सूत्रों का संधान भी करता है।

शास्त्रकार अन्वय–व्यतिरेक पद्धति का विवेचन–विश्लेषण विवेकपूर्ण करता है तथा विवेच्य साहित्य रूपों के भेदक तत्त्वों के साथ उसका ध्यान समान तत्त्वों पर बराबर बना रहता है। वही सूत्रबद्ध होकर नियम का रूप धारण करते हैं। और सिद्धान्त प्रतिपादित होते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि ''इस प्रकार, साहित्यशास्त्र एक ऐसे विषय का अनुशासन है, जो स्वयं परिणति की व्यवस्था में सार्वभौम बन जाता है। अतः सार्वभौमता उसकी प्रकृति का ही सहज अंग है जिसकी सिद्धि के लिए अधिक ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसी तर्कक्रम से विश्व साहित्यशास्त्र विश्वसाहित्य का आधारशास्त्र है और विश्वसाहित्य की अवधारणा के अनुसार उसके स्वरूप की परिकल्पना की जा सकती है।''

(विश्व साहित्यशास्त्र की परिकल्पना पृ. 14)

वस्तुतः विश्वसाहित्य साहित्य की सार्वभौम परिकल्पना है। यह राष्ट्रीय और भाषिक सीमाओं से परे उसको समग्रता में ग्रहण करती है। इसकी अभिव्यक्ति के माध्यम का निर्माण सार्वभौम भाषिक रूपों से होता है। यह लोकमानस के राग–विराग के सहज वाहक होने के कारण विविध भाषिक भेदक विशेषताओं से सर्वथा मुक्त होता है। विश्व साहित्यशास्त्र की संकल्पना ऐसे सिद्धान्त सूत्रों और नियमों पर की जा सकती है, जो देश, काल, परिस्थिति,

भाषायी साहित्य का ही नहीं, बल्कि प्रत्येक देश, काल एवं भाषा के साहित्य का विवेचन–विश्लेषण करने में सक्षम है, सफल है। इसमें सिद्धान्त सूत्रों का निर्धारण मुख्यतया मानव चेतना की एकता पर आधृत होता है। भारतीय अद्वैतवाद तथा पाश्चात्य चिद्वाद के साथ–साथ आत्मचैतन्य और मनोविज्ञान सम्मत चेतना का समन्वित रूप भी इसमें मिलता है। चेतन और अचेतन दोनों मनोविज्ञान के वेत्ताओं और मनोवैज्ञानिकों ने मानव चेतना को आधार मानकर ही अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, जिसकी परिणति में सम्पूर्ण विधान आता है। निश्चय ही वह सार्वभौम संकल्पना है, जो राष्ट्रीय, देशीय एवं भाषिक सीमाओं से सर्वथा मुक्त है।

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में प्रायः सर्वमान्य जीवनदर्शन है, जो जीवनदर्शन मानववाद पर ही आधृत है, जिसका सीधा संबंध मानव चेतना से है। वास्तव में मानव अनुभूतियों में एक समान ही सिद्धान्त सूत्र मिलते हैं, क्योंकि मानव जीवन में एक निश्चित सातत्य मिलता है, चिरन्तरता मिलती है, शाश्वतता मिलती है। वास्तव में गम्भीरता से यदि चिंतन–मनन किया जाए, तो वैश्विक स्तर पर साहित्यकार द्रष्टा और स्रष्टा की समन्वित ज्ञान ज्योति प्रज्ज्वलित करते रहे हैं। विश्व के साहित्य में संवेदनात्मक धरातल पर काफी साम्य है। अतएव विश्व साहित्यशास्त्र में भी अद्‌भुत भावात्मक और वैचारिक साम्य परिलक्षित होता है, जिसे सामान्य रूप से वैश्विक कहा जा सकता है। विश्व वाङ्मय पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यशास्त्रों में सिद्धान्त सूत्रों में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। जीवन में पूर्णता की खोज ही भारतीय जीवन दर्शन का आधार है, जबकि पाश्चात्य में भी सुखमय जीवन–यापन करना ही जीवन का मुख्य ध्येय है। भारत का जीवन–दर्शन 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' का संदेश विश्व को देता है, वही शास्त्रों में भी प्रकारान्तर से व्यंजित हुआ है। यह एक स्वस्थ जीवनदर्शन है, भावात्मक एवं शास्त्रीय दर्शन है। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में भौतिक मूल्यों की उपादेयता और सार्थकता स्वीकार की गई है, जबकि भारतीय जीवनदर्शन में आध्यात्मिक मूल्य ही शास्त्रीय मूल्य है। कलामूल्य गत्यात्मक एवं गतिशील होते हुए भी उच्चतम भावभूमि पर स्थापित
होते रहे हैं। सत्य, सौन्दर्य एवं कल्याण पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के मूल्य हैं।

भारतीय साहित्य चिंतकों ने प्रकृति के सुरम्यशांत वातावरण में एकान्त साहित्य–साधना में रत रहकर साहित्यशास्त्र रचे हैं। अनुभूत सत्य ही भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। त्याग, तपश्चर्या, तपोवन एवं विश्व बन्धुत्व ही तनावग्रस्त विश्व में विश्व मानव को भारतीय मनीषा का यह संदेश है, इसी सांस्कृतिक चैतन्यता में प्रागैतिहासिक युग में ही साहित्यशास्त्र का निर्माण हुआ था। साहित्यशास्त्र में साहित्यिक उत्कर्ष के साथ–साथ दार्शनिक उत्कर्ष की भी भावधारा प्रवाहित हुई है, जिससे विश्व साहित्यशास्त्र
भी कुछ सीमा तक प्रभावित हुआ है। किसी भी राष्ट्र या देश की सामाजिक, सांस्कृतिक उत्कर्ष का पता वहाँ के जीवन–दर्शन और वैचारिक तत्त्वों से ही चलता है, जो मानव संस्कृति का परिचायक होता है। भारतीय जीवनदर्शन के ऐहिक एवं पारलौकिक संकल्पों का समन्वय दर्शानेवाला एक प्रस्तर–लेख जापान में प्राप्त हुआ है, जिससे साहित्यशास्त्र के प्रभाव का पता चलता है। कहा गया है–

अनेन पुण्येन विहारजेन प्रतीत्य जातार्थ विभाग विज्ञाः ।
भवन्तु सर्वे विभवोपपन्ना जना जिनाना मनुशासनज्ञाः ।।

भारतीय साहित्यशास्त्र विचारप्रधान साहित्यशास्त्र है। प्रकृति ने भारत को सांसारिक चिंताओं से मुक्त होकर पारलौकिक जीवन के संबंध में चिंतन–मनन का सुअवसर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन तत्त्ववेत्ता एवं साहित्य चिंतकों ने इस सम्पूर्ण विश्व के नियामक और नियंता किसी आध्यात्मिक सत्ता पर विश्वास किया। उससे प्राप्त आत्मज्ञान ही भारतीय दर्शन का मूल है–यही सिद्धान्त सूत्र साहित्यशास्त्र में भी विद्यमान है। मुंडकोपनिषद् में कहा गया है–'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्, ब्रहमविद्या सर्वविद्या प्रतिष्ठा' लोककल्याण की भावना से (गीता) प्रेरित होकर ही भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने आध्यात्मिक तत्त्वों का चिंतन करते हुए नियति के शाश्वत, चिरंतन एवं सार्वभौमिक तत्त्वों और सिद्धान्तों का रहस्योद्‌घाटन किया है, जिससे साहित्यशास्त्र की निर्मिति संभव हुई है।

भारतीय साहित्यशास्त्र विश्व साहित्यशास्त्र का एक अंग है। विश्व साहित्यशास्त्र में बहुत से सिद्धान्त सूत्र भारतीय साहित्यशास्त्र से लिये गए हैं। साहित्यशास्त्र में आध्यात्मिक चिंतन की वाणी मुखरित हुई है। भारतीय साहित्यशास्त्र प्रधानतया धर्ममूलक है, जिसमें सार्वभौम चिरन्तन सत्ता की खोज का प्रयास किया गया है। वास्तव में सम्पूर्ण सृष्टि एक ही परमतत्त्व से उद्‌भूत हुई है और उसका पर्यवसान भी उसी में हुआ है। इस तथ्य को सत्य रूप में विश्व साहित्यशास्त्र स्वीकार करता है। एकेश्वरवाद पर आधृत विश्वबन्धुत्व की भावना विश्व साहित्यशास्त्र में सर्वत्र देखने को मिलती है। धर्म और दर्शन का अद्‌भुत समन्वय भारतीय साहित्य में परिलक्षित होता है, उसकी छाप विश्व साहित्यशास्त्र में भी देखी गई है। भारतीय साहित्यशास्त्र ने सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय को प्रभावित किया है, क्योंकि भारतीय साहित्यशास्त्र को अनुप्राणित करनेवाला तत्त्व विश्व मानवतावाद है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के आधार पर मानव मूल्य और विश्वमानवतावाद को महत्त्व दिया गया है। वास्तव में मानव ही विश्व का केन्द्र है और वही सर्वश्रेष्ठ है। शांतिपर्व में कहा गया है कि–

'गुह्यं ब्रह्मं तदिदं वो ब्रीवीमि नहिं मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।'

विश्व के सभी मनुष्यों के लिए एक ही संदेश है, एक ही उपदेश है कि उसे विश्वमानव बनना है। हमें विश्वात्मा बनना है। हमें अपनी आत्मा को विश्व में और विश्व को अपनी आत्मा में देखना है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' ही हमारी विश्वमानवतावादी दृष्टि है, जिसके कारण भारत विश्वगुरु कहा जाता है। विश्व साहित्य शास्त्र में इसी भावना की वाणी सर्वत्र ध्वनित हुई है। कहा गया है कि ''संसार के विभिन्न देशों का साहित्य इन्हीं रागाविरागमयी अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति का संचित कोष है। विभिन्न देशों के साहित्यशास्त्र मूलतः जहाँ अपने–अपने सीमा–क्षेत्र में घटित चित्रविचित्र मानव अनुभूतियों के व्यक्त रूपों का विवेचन एवं मूल्यांकन करते हैं, वहाँ विश्वसाहित्य का लक्ष्य रहता है, ऐसे साहित्य रूपों का अध्ययन जो देश, काल की सीमाओं से मुक्त, मूल मनोवृत्तियों और मनोवेगों की कलात्मक व्यंजना करते हैं।''

विश्वसाहित्य की सत्ता अधिकांश साहित्यशास्त्रियों ने स्वीकार की है। वास्तव में भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्रों के समन्वय से ही विश्व साहित्यशास्त्र का निर्माण सम्भव है। भारतीय साहित्य मूलतः धर्ममूलक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक तत्वों से समन्वित साहित्य है, जिसके शास्त्र का निर्माण इन्हीं समन्वयवादी तत्त्वों से हुआ है। भारतीय और पाश्चात्य साहित्य अत्यन्त विकसित और समृद्ध साहित्य है, जिसके समन्वय से विश्व साहित्यशास्त्र का निर्माण सहज सरल रूप से हो सकता है। भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र काफी हद तक एक दूसरे के पूरक सिद्ध हो सकते हैं। दोनों के समन्वय से, समीकृत होने से सार्वभौम साहित्यशास्त्र का निर्माण हो सकता है, वृत तैयार किया जा सकता है। भामह ने 'काव्यालंकार' कृति में स्पष्ट उल्लेख किया है कि 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' अर्थात् जहाँ शब्द अर्थ का पूर्ण तादात्म्य हो, सामंजस्य हो, समन्वय हो, वही काव्य है। यह कलात्मक तादात्म्य या सामंजस्य ही काव्य या साहित्य की सृष्टि कराता है।

भारतीय चिंतक पं. जगन्नाथ ने 'रस गंगाधर' में काव्य को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ की व्यंजना करनेवाला शब्द विधान ही काव्य है। पाश्चात्य काव्य में भी शैले, पोप आदि ने भी सौन्दर्य के लयात्मक अभिव्यक्ति को काव्य की संज्ञा दी है। सौंदर्य वास्तव में रमणीय अर्थ का ही बोधक है, जो चित्त का प्रसादन करता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में सहृदयता का समानांतर शब्द संवेदना काव्य में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें भावना और कल्पना का समन्वय होता है। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में काव्य के प्रति लोक परक दृष्टि का उन्मेष देखने को मिला है, जिसका साक्ष्य है–अरस्तू का काव्यशास्त्र। अरस्तू ने काव्य को प्रकृति का अनुकरण कहा है। विक्टोरियन कवि समीक्षक मैथ्यू

आर्नल्ड ने काव्य को जीवन की समीक्षा कहा है।

अरस्तू और उनसे अनुप्रेरित जीवनवादी काव्य समीक्षकों ने 'प्रीति' और 'चित्त की चमत्कृति' को दृष्टिगत रखते हुए काव्य को पारिभाषित किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में जीवन के आख्यान को काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत स्वीकारा है, क्योंकि जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि और साहित्यकार की प्रसिद्धि काव्य से ही मिलती रही है। तात्त्विक दृष्टि से प्रकृति और प्रयोजन में भेद होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर दोनों एक दूसरे में अंतर्भूत हो जाते हैं, समीकृत हो जाते हैं। भाववादी और वस्तुवादी दोनों विचारकों के मत जीवन में रसानुभूति करते हैं, आनंद और कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। कला के सार्वभौम व्याख्या भाव–कल्पनात्मक धरातल पर की जा सकती है। 'कला के लिए' कला का सिद्धान्त यूरोप में अस्तित्व में आया और कला जीवन के लिए का प्रतिपादन भारतीय साहित्यशास्त्र में हुआ भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के दो मुख्य प्रयोजन बताए गए हैं–प्रथम धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि एवं द्वितीय आनंद।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू ने काव्य के दो मुख्य प्रयोजनों का प्रतिपादन शिक्षा और आनंद के रूप में किया है। अरस्तू ने अनुकृति की प्रकृति पर विशेष बल दिया है, क्योंकि अनुकृत वस्तु से प्राप्त आनंद भी एक प्रकार का सार्वभौम ही होता है। पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में समीक्षकों का एक वर्ग ऐसा है, जो काव्य के माध्यम से नैतिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करना चाहता है। उनमें लोकमंगल, लोककल्याण की भावना देखी गई है। उनमें लोकमंगल, लोककल्याण की भावना पाई गई है। प्राचीन में होरेस सत्रहवीं शताब्दी में जॉन मिल्टन, उन्नीसवीं शती में रस्किन एवं विक्टोरियन युग में मैथ्य–आर्नल्ड हैं, जिन्होंने काव्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

रस्किन ने 'लेक्चर्स ऑन आर्ट' में लिखा है कि 'किसी राष्ट्र की कला उसकी नैतिक स्थिति की द्योतक हैं।' रूसी साहित्यकार टॉलस्टाय ने आनंद और सौंदर्य का परहेज करते हुए मानव एकता को कला का उद्देश्य घोषित किया है। कला को पारिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'यह कला आनंद नहीं है, वरन् मानव एकता का साधन है, जो मानव–मानव को सह अनुभूति के द्वारा परस्पर सम्बद्ध करती है।' यह कथन मात्र शब्द जाल है, क्योंकि पारस्परिक मानव की सम्बद्धता प्रीतिकर, सुखकर होती हैं। मानव जब मानव से एक साथ मिलेगा, तो मिलन में सुखानुभूति अवश्य होगी, इसे सहृदय को बताना न पड़ेगा। साथ ही आनन्द की प्राप्ति होगी और टॉलस्टाय के सिद्धान्त सूत्र में बाह्य स्तर पर भेद भले ही दिखाई देता है; लेकिन आभ्यान्तर में कोई भेद नहीं है, एक दूसरे के पूरक हैं।

मार्क्सवादी साहित्य चितकों ने जनहित को लोकहिताय को ही काव्य निकष माना है। जनजीवन के लिए उपयोगी, समाजोपयोगी एवं सामाजिक चेतना के विकास में सहायक तत्त्व ही काव्य प्रतिमान माने गए हैं। समाजशास्त्रीय चिंतकों में भी तीन वर्ग देखने को मिलते हैं। प्रथम में रस्किन और उनके अनुयायी हैं, जिन्होंने धर्माधर्म पर आधारित और आश्रित नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा को ही काव्य का प्रयोजन माना है। द्वितीय वर्ग में टॉलस्टाय और उनके अनुयायी आते हैं, जिन्होंने स्वीकार किया है कि काव्य मानव के सुख–दुख, शक्ति और दुर्बलता पर आश्रित करुणामूलक मानवीय मूल्यों को ग्रहण करता है। तृतीय वर्ग में कार्लमार्क्स और उनके अनुयायी आते हैं। उनके मतानुसार काव्य या साहित्य मानव समाज के भौतिक उत्कर्ष के साधक सामाजिक मूल्यों का प्राण मानता है। इन साहित्य चिंतकों की अवधारणा है कि सौंदर्य की कोई अलग सत्ता नहीं है, बल्कि शिव की साधना में ही अन्तर्निहित है। सुन्दर और शिव को कुछेक समीक्षक अलग–अलग मानते हैं।

'कला कला के लिए' सिद्धान्त के प्रतिपादक सभी समाजशास्त्रीय साहित्यकार मार्क्सवादी दृष्टि से रूपायित हैं। उनमें विक्टर ह्यूगो, स्विनबर्न, ऑस्कर वाइल्ड, बैडले, क्लाइव बैल, पेटर, ह्वसलर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने कला–कला के लिए सिद्धान्त का समर्थन किया है तथा तदनुसार साहित्य सृजन किया है। ये सभी साहित्य शास्त्रीय कला की सृष्टि अपने आपमें एक सिद्धि मानते हैं। काव्य–जगत को वे स्वतंत्र एवं अद्‌भुत जगत मानते हैं, जो अपने आपमें निराला होता है।

आनंद को काव्य का एक मात्र प्रमुख प्रयोजन माननेवाले साहित्य–समीक्षकों में शिलर, कोलरिज, शैली आदि स्वच्छन्दवादी वादी रोमानी समीक्षक हैं। शिलर के मतानुसार समस्त कला का लक्ष्य है–''आह्लाद सुख से अधिक उदात्त और गम्भीर, कोई समस्या नहीं है।'' ये लोग कला को निष्प्रयोजन नहीं मानते, क्योंकि कला से आनंदानुभूति होती है, सौन्दर्यानुभूति होती है। अनिवर्चनीय आनंद, आहलाद का स्रोत कला होती है। आनंद कला का निश्चित उद्देश्य होता है। विश्व साहित्यशास्त्र में भारतीय और पाश्चात्य दोनों सिद्धान्तों में लोकमंगलकारी नैतिक मूल्यों के संबंध में बहुत अधिक समानता है। कला के लिए कला का सिद्धान्त आहलाद सिद्धान्त का ही विकसित रूप माना गया है।

प्राचीन आचार्यों में रोमी मनीषी सिरो, यूनानी आचार्य लॉजाइनस, अठारहवीं शती में ड्राइडेन तथा गोइटे और विक्टोरियन युग में मैथ्यू आर्नल्ड आदि ने इस संतुलित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, समर्थन किया है। ये आलोचक नैतिकता और आनंद में, शिव और सुन्दर में, कोई विरोध न मानकर नैतिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति माना है। जीवन का व्यापक आधार ये साहित्य–चिंतक नैतिकता को ही मानते हैं। आनंद और मनोरंजन को भी परिष्कृत एवं स्वस्थ रूप में ग्रहण करते हैं। इन लोगों का दृष्टिकोण उपयोगितानी भी है जो जीवनोपयोगी है, राष्ट्रोपयोगी है वही इन लोगों के लिए ग्राह्य है। अतएव स्वस्थ आनंद को ये लोग निश्चित रूप से जीवन के लिए उपयोगी मानते हैं। इस प्रकार आनंदवादी मूल्यों और नैतिक मूल्यों में कोई मौलिक भेद नहीं रह जाता है।

विक्टोरियन कवि समीक्षक मैथ्यूआर्नल्ड ने ठीक ही कहा है कि 'नैतिकता को प्रायः संकीर्ण और अशुद्ध अर्थ में ग्रहण किया जाता है, जिसका समय बीत चुका है। अब वह रूढ़ियों और व्यावसायिक लोगों के हाथ में पड़ गई हैं, जिससे कुछ लोग उब उठते हैं। कभी–कभी हमें उनके विरुद्ध विद्रोह रुचिकर प्रतीत होने लगता है, ऐसी कविता में रस आने लगता है, जो उमर खैयाम के इन शब्दों को सिद्धान्त वाक्य मानकर चलती है, जो समय हमने मस्जिद में नष्ट किया है, उसकी क्षतिपूर्ति आओ, मदिरालय में चलकर करें। मैथ्यू ऑर्नल्ड ने नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोही काव्य
को जीवन के प्रति विद्रोही माना है, नैतिक मूल्यों के प्रति पराङ्मुख काव्य जीवन के प्रति पराङ्मुख है।'' विश्वसाहित्य मुख्य रूप से भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का समन्वित रूप है, जिसमें भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों के विचारों में साम्य देखने को मिलता है। दोनों ही साहित्यशास्त्रों में काव्य के दो मुख्य प्रयोजन स्वीकार किए गए हैं। प्रथम लोकमंगल और आनंद है, जिसे दूसरे शब्दों में श्रेय और प्रेम की अभिव्यक्ति भी कहा जा सकता है। द्वितीय लोकमंगल की चरम परिणति व्यक्ति और समाज को सुखानुभूति में निहित होती है। कल्याण का फलयोग भी प्रकारान्तर से आनंद ही स्वीकार्य हुआ है। काव्य के स्वरूप के आधार पर भी विवेचन–विश्लेषण किया जा सकता है। काव्य यदि जीवन की रसात्मक अभिव्यक्ति है, तो काव्यजन्य आनंद भी भाव कल्पनाजन्य आनंद ही हो सकता है।

आलेख

चापेकर बंधुओं का बलिदान

इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना

डॉ. ऊषा निगम
74 कैंट, कानपुर
मो0–9792733777

भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन में ऐसा अनेक बार हुआ है, जब एक ही परिवार के अनेक व्यक्तियों नें मृत्यु का वरण किया। वीरों की इस शृंखला में सर्वप्रथम महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मण चापेकर बंधुओं–दामोदर, बालकृष्ण और वासुदेव का नाम आता है। क्रान्तिकारी आंदोलन का केन्द्र बंगाल रहा, लेकिन सर्वप्रथम महाराष्ट्र में क्रान्ति की चिनगारी प्रकट हुई। पहले वासुदेव बलवंत फड़के और ठीक उसके बाद चापेकर बंधु।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि महाराष्ट्र में उस समय ऐसा क्या था, जो वहाँ की धरती पर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह का विस्फोट हुआ। ऐसे विस्फोट जब भी कहीं होते हैं, उसमें तत्कालीन आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवेश का बड़ा हाथ होता है। महाराष्ट्र में भी ऐसा ही हुआ था। 19वीं शताब्दी के अंत में महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा। अकाल जनित समस्याओं के समाधान के लिए सरकार की ओर से कोई ठोस कदम नहीं उठाये गए थे। फलस्वरूप महाराष्ट्रवासियों में घोर असंतोष था।

राजनीतिक दृष्टि से उस समय महाराष्ट्र को एक ऐसा अतुलनीय चिंतक और नेता मिला, जिसने महाराष्ट्र ही नहीं, वरन्
सारे देश की विचारधारा को प्रभावित किया। तभी श्री अरविंद घोष ने तिलक के लिए लिखा था–''जबतक देश को अपने अतीत पर गर्व और अपने भविष्य के प्रति आशा रहेगी, तबतक उन्हें कृतज्ञतापूर्वक याद किया जाता रहेगा।'' तिलक ने पहले 'गणपति उत्सव' और फिर 'शिवाजी उत्सव' समारोहों का आरंभ किया। इन समारोहों में गाए जानेवाले श्लोक, भजन और वहाँ दिए जानेवाले भाषणों में धर्म की आड़ में ऐसी द्विअर्थीय भाषा का प्रयोग किया जाता था, जिसके विरुद्ध सरकार कोई कदम नहीं उठा पाती थी। ये उत्सव अत्यधिक लोकप्रिय हो रहे थे, जैसा कि 'द मुम्बई वैभव' पत्र ने 09 अप्रैल, 1896 के अंक में लिखा था
कि ''उत्सव (शिवाजी उत्सव) एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रामक रोग की तरह फैल रहा है।'' इन उत्सवों में शिवाजी और उनकी नीतियों का वर्णन वर्तमान संदर्भों में किया जाता था। तत्कालीन पत्र जैसे महाराष्ट्र मित्र, पूना वैभव, सुधारक और स्वयं तिलक का समाचार पत्र 'केसरी' इन चर्चाओं से भरे रहते थे।

इसी समय 1896 में बम्बई पूना में प्लेग फैला। स्थिति विकट थी। सरकार ने इस संकट का सामना करने के लिए 04 फरवरी, 1897 में 'संक्रामक रोग ऐक्ट' पास किया। इस ऐक्ट को कार्यान्वित करने के लिए पूना में मि. रैण्ड को प्लेग कमिश्नर नियुक्त किया गया। उन्होनें सेना की सहायता से युद्ध स्तर पर बड़े अमानवीय रूप से भारतीय आस्थाओं और रीति–रिवाजों की अवहेलना करते हुए प्लेग की रोकथाम के प्रबंध किए। शहर से दूर स्थित कैम्पों में पुरुषों एवं महिलाओं का अशोभनीय तरीकों से परीक्षण किया जाता था। इस सारी व्यवस्था में पर्दे की प्रथा का पूर्ण उल्लंघन हुआ। अस्पतालों में भी संतोषजनक प्रबंध नहीं था। तत्कालीन समाचार पत्रों के अनुसार अस्पताल जाने के स्थान पर लोग डूबकर मर जाना अधिक पसंद करते थे।

तिलक ने रैण्ड और सरकार की बहुत आलोचना की। उन्होंने 4 मई, 1897 को 'केसरी' में लिखा कि ''बीमारी तो एक बहाना है, दरअसल सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है।'' रैण्ड अत्याचारी है और वह सरकार की सहमति से ही ऐसा कर रहा है।'' वस्तुतः रोग से अधिक रोग–निवारण के उपाय कष्टप्रद हुए। यही वह पृष्ठभूमि थी, जिसमें चापेकर बंधु रह रहे थे।

कहने का तात्पर्य यह कि 19वीं सदी के अंत में महाराष्ट्र में अजीब तरह की बेचैनी और असंतोष था। कुछ था जो भीतर ही भीतर सुलग रहा था विस्फोट तो होना ही था। यह विस्फोट मि. रैण्ड की हत्या के रूप में हुआ और माध्यम बने दामोदर हरि चापेकर।

चापेकर बंधुओं के पिता प्रसिद्ध कीर्तनकार थे। यहीं कार्य उन्हें विरासत में मिला। लेकिन तीनों भाइयों का मन कीर्तन में नहीं लगता था। दामोदर हरि और बाल कृष्ण तिलक के संपर्क में आये और उनके स्वयं सेवक दल के कार्यकर्ता बने। 12 जून, 1897 में पहली बार 'शिवाजी उत्सव' मनाया गया, जिसमें चापेकर बंधुओं ने बड़े उत्साह से हिस्सा लिया। उन्होंने शिवाजी उत्सव में जो श्लोक गाये, उसका अर्थ यह था कि 'केवल बैठे–बैठे शिवाजी की गाथा की आवृत्ति करने से आजादी नहीं मिल सकती है। हमें तो शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कस कर भयानक कृत्यों में जुट जाना पड़ेगा। अब आपको आजादी के निमित्त ढाल–तलवार उठा लेनी पड़ेगी। सुनो, हम राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में अपने जीवन का बलिदान कर देंगे और आज उन लोगों के रक्तपात से, जो हमारे धर्म को नष्ट कर रहे हैं, पृथ्वी को रंग देंगे। हम मारकर ही मरेंगे और तुम लोग घर बैठे औरतों की तरह हमारी कहानी सुनोगे।''

इसी प्रकार गणपति श्लोक में उन्होंने कहा–''हाय! गुलामी में रहकर भी तुम्हें लाज नहीं आती? इससे अच्छा यह है कि तुम आत्महत्या कर डालो। उफ! दुष्ट हत्यारे, कसाइयों की तरह गोवध करते हैं, गो माता को दयनीय दशा से छुड़ा लो। मर जाओ, किंतु पहले अंग्रेजों को मारो तो सही। चुप मत बैठे रहो। बेकार पृथ्वी पर बोझ मत बढ़ाओ। हमारे देश का नाम तो हिंदुस्तान है, फिर यहाँ अंग्रेज क्यों राज्य करते हैं?'' ये श्लोक चापेकर बंधुओं की भावनाओं को प्रकट करते हैं। अंग्रेजों के प्रति असीम घृणा, उनके विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की ललकार अपने धर्म और देश की रक्षा की यह पुकार, निश्चित रूप से कुछ बदल रहा था।

दामोदर हरि फौज में भर्ती होकर फौजी प्रशिक्षण लेना चाहते थे। तिलक ने श्याम कृष्ण वर्मा (प्रसिद्ध क्रान्तिकारी) से जो उस समय उदयपुर के दीवान थे, दामोदर जी हरि को सेना में भर्ती करवाने के लिए कहा था, किंतु किन्हीं कारणों से ऐसा नहीं हो सका। फिर भी दामोदर हरि अपने स्तर से युवकों को सामरिक प्रशिक्षण के लिए प्रेरित करते रहे। इसी उद्देश्य से उन्होने फर्गुसन कॉलेज में भाषण भी दिया था। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 'चापेकर संघ' नामक समिति की स्थापना हुई। इस समिति के देशभक्त नवयुवक विदेशी सरकार के विरुद्ध छोटी–छोटी घटनाएँ करते रहते थे। इस दल के किसी युवक ने बम्बई में महारानी विक्टोरिया की प्रतिमा के मुख पर कोलतार पोता था और उन्हें जूतों की माला पहनाई थी।

यही वह समय था, जब पूना की जनता प्लेग तथा प्लेग को नियंत्रित करने के साधनों से पीड़ित थी। विदेशी सरकार मि. रैण्ड के माध्यम से मनमानी कर रही थीं। दामोदर हरि का हृदय प्रतिशोध लेने के लिए विकल था। वे तो सिपाहियों को दंडित करना चाहते थे, लेकिन तिलक ने शाखाओं पर नहीं जड़ पर प्रहार करने का विचार दिया। यद्यपि रैण्ड को मारने की योजना में तिलक का कोई हाथ नहीं था।

दामोदर हरि ने रैण्ड को मारने की सफल योजना बनाई। दामोदर और उनके सहयोगियों ने कई सप्ताह तक रैण्ड की गतिविधियों पर उसकी

आदतों एवं उसके दैनिक कार्यक्रमों पर दृष्टि रखी। 22 जून, 1897 को महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक दिवस सारे देश में मनाया जाना था। इसी तिथि को रैण्ड की हत्या के लिए चुना गया। दामोदर और उनके सहयोगियों की पूरी टीम चौकन्नी थीं। पूना शहर में राज्याभिषेक दिवस मनाया जा रहा था। रैण्ड और उनके सहयोगी एयर्स्ट समारोह से लौट रहे थे। उसी समय दामोदर ने रैण्ड पर और उनके सहयोगी रानाडे में एयर्स्ट पर गोलियाँ चलाई। एयर्स्ट की मृत्यु उसी समय हो गई तथा रैण्ड की मृत्यु 03 जुलाई को हुई।

इस घटना ने पूना में हलचल मचा दी। सरकार के समक्ष यह स्पष्ट हो गया कि यह हत्या किसी सोचे समझे राजनीतिक षडयंत्र का परिणाम है, जिसे एकजुट होकर दबाना है। आपराधियों को पकड़ने के लिए बीस हजार रुपयों के इनाम की घोषणा की गई। धन के लालच में चापेकर संघ के ही एक सदस्य गणेश शंकर द्रविड़ ने दामोदर को पकड़वाने में पुलिस की मदद की। 09 अगस्त को दामोदर पकड़े गए। उन्होंने रैण्ड की हत्या के साथ ही यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने ही तिलक की आलोचना करने वाले स्थानीय पत्रों के दो संपादकों पर भी आक्रमण किया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने ही विक्टोरिया की प्रतिमा के मुख पर कोलतार पोता था, उन्हें जूतों की माला पहनाई थी, और यह भी कि उन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय के मंडप में तथा पूना के मंडप में भी आग लगाई थी। कुछ समय के बाद बालकृष्ण भी पकड़ लिए गए।

पुलिस को दामोदर के छोटे भाई वासुदेव पर भी संदेह था। किंतु वासुदेव सरकार के प्रति वफादारी का दिखावा करते रहे। वो मन–ही–मन में अपने बड़े भाई को पकड़वाने में मदद देने वाले द्रविड़ बंधुओं को मारने की योजना बना रहे थे। अपने दो सहयोगियों साठे और रानाडे की मदद से उन्होने सफलतापूर्वक अपनी योजना को अंतिम रूप दिया और दोनों द्रविड़ बंधु 'गणेश' और 'रामचन्द्र' उनके द्वारा मारे गए।

शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर लेना सरल कार्य नहीं था। एक ओर सर्व साधन संपन्न साम्राज्य था, तो दूसरी ओर साधारण चितपावन ब्राह्मण कीर्तनकार बंधु थे। दोनों की कोई तुलना नहीं थी। उन्हें यह भी पता था कि ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर लेने का परिणाम उनकी मृत्यु है। उनके खिलाफ मुकदमा चला। अदालत ने दामोदर, बालकृष्ण, वासुदेव और रानाडे को मृत्युदंड तथा साठे को सात वर्ष की सजा सुनाई।

दामोदर को 18 अप्रैल, 1898 में फाँसी दी गई। इतिहासकार के.सी.घोष के कथनानुसार यह वह दिन है, जिसे संपूर्ण राष्ट्र के द्वारा कृतज्ञतापूर्वक याद किया जाना चाहिए–08 मई, 1899 को वासुदेव, 10 मई को रानाडे, 12 मई को बालकृष्ण को फाँसी दी गई। इन सभी ने अपने मृत्युदंड को शांति और धैर्य से स्वीकार किया। कहीं कोई घबराहट नहीं, कोई पछतावा नहीं।

रैण्ड की हत्या तथा इसके परिणाम स्वरूप जिन व्यक्तियों को फाँसी हुई, उसका इतिहास तिलक की चर्चा के बिना अधूरा है। जिस समय दामोदर हरि को फाँसी हुई, तिलक भी उस समय यरवदा जेल में थे। उन्हें केसरी के 15 जून के अंक के लिए सजा मिली थी, जिसमें उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से रैण्ड की हत्या का समर्थन किया था। यह सच है कि तिलक अपने अनुभवों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि अभी सशस्त्र क्रान्ति का उपयुक्त समय नहीं है, फिर भी उनका सहयोग और सहानुभूति सशस्त्र क्रान्ति की ओर बढ़ रहे युवकों को मिला हुआ था। खुफिया विभाग के इन्सपेक्टर ब्रेविन को उन्होंने रैण्ड के हत्यारों के बारे में बताने से इंकार कर दिया था। उन्होंने अंत तक चापेकर बंधुओं, रानाडे और साठे की कभी आलोचना नहीं की। दामोदर हरि ने फाँसी से पहले जेल के अधिकारियों के माध्यम से तिलक से गीता की एक प्रति देने का अनुरोध किया था। तिलक ने अधिकारियों की अनुमति लेकर गीता की एक प्रति उन्हें दी थी। उसी प्रति को हाथ में लेकर दामोदर हरि फाँसी के फंदे तक पहुँचे।

लाला लाजपत राय ने चापेकर बंधुओं की फांसी के प्रति अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए लिखा था कि ''लोगों को यह नहीं लग रहा था कि हिंसा होनी चाहिए, फिर भी चापेकर बंधु की उदात्त, साहसी कार्यवाही के प्रति उनके मन में आदर मिश्रित कौतूहल था। लोग चापेकर बंधुओं के कार्य का नहीं, वरन् इस कार्य के पीछे निहित राजनीतिक उद्देश्य का आदर कर रहे थे।''

यह सत्य है कि चापेकर बंधुओं ने विदेशी सरकार से बदला लेने के लिए जिस सशस्त्र तकनीक का आरंभ किया, वह तकनीक अपने घातक परिणामों के कारण भविष्य में बहुत प्रभावशाली हुई। किसी अंग्रेज अफसर की हत्या की यह प्रथम घटना थी और दामोदर हरि चापेकर उसके प्रथम शहीद थे। उनकी यह शहादत व्यर्थ नहीं गई। तमाम युवकों को उनसे प्रेरणा मिली। यह भी स्पष्ट हो गया कि यदि देश को स्वतंत्र करना है, तो सशस्त्र विद्रोह भी एक मार्ग है।

लघुकथा

क्या स्मृति अगर होती है ?

संजय वर्मा 'दृष्टि' मनावर (धार) एक जानकारी के मुताबिक पलक झपकने से तीन गुना तेज याद आती है घटनाओं के बारे में पढ़ा। स्मृतियाँ सिमेटिक भाषा के तथ्य समझने पर व एपिसोडिक व्यक्ति विशेष के लिए खास महत्व रखती है। रटंत क्रिया से भी याददाश्त मजबूत होती है। चिंतनीय प्रश्न यह उठता है कि क्या इंसान के मरने के बाद स्मृतियाँ अमर होती हैं? पुनर्जन्म के उदाहरण में तो स्मृतियाँ पहचान का आधार बनाती कई घटनाएँ पढ़ने, सुनने में आती रही हैं। कई लोगों को पिछले जन्म की घटनाएँ याद रहती हैं। छोटी उम्र में पुनर्जन्म की बातें ज्यादा याद रहती। फिर बड़े होने पर कम हो जाती है। पुनर्जन्म पर कई फिल्में, सीरियल भी बने हैं। आज भी कई बच्चे ऐसे जिनकी जनरल नॉलेज की मेमोरी बहुत ही तगड़ी है और इसी प्रतिभा के कारण गिनीज बुक रिकार्ड में भी उनका उल्लेख है। ज्योतिष और विज्ञान भी स्मृति अमर और शरीर खत्म होने की बात कहता है। पुनर्जन्म में मेमोरी ट्रांसफर भी शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश होती होगी। इसी प्रकार से मनुष्य के शरीर में हवा लगना यानी भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि का लगना, जिसको ओझा जानकार उसके द्वारा उतारा भी जाता है। कोई इसे मानसिक रोग मानता है, किंतु बाधा पीड़ित इंसान की बाधा होने से बोली भी बदल जाती है। जिसे उसे कभी भी पढ़ी बोली सुनी नहीं होती है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिले हैं। दाह संस्कार के समय कपाल क्रिया किये जाने के प्रति क्या, धारणा के पीछे क्या, पुनर्जन्म मैमोरी का रहता है?ये अभी तक विस्तृत रूप से मालूम नहीं है, प्राचीन ग्रंथों पुराणों में अमरता प्राप्त का उदाहरण भी पढ़ने को मिलते हैं। मस्तिष्क की क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं के गूढ़ रहस्य को सुलझाने में और भी शोध की आवश्यकता है, ताकि पुनर्जन्म से स्मृति कैसे अमर बनी रहती ज्ञात हो सके।

आलेख

हिन्दी मराठी नाटकों में नारी चित्रण

डॉ. रमा राहुल दुधमांडे
विभागाध्यक्ष (डॉ. सौ.ई.मा.पा.)
महिला महाविद्यालय, औरंगाबाद
(मो.–8975032435)

नाटक निर्विवाद रूप से आधुनिक युग की एक लोकप्रिय विधा है, क्योंकि यह श्रव्य ही नहीं, बल्कि दृश्य भी है। यह विद्या जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत करती है। जीवन का अर्थ है–परिवर्तन और यह परिवर्तन नाटक में उभरते हुए दिखाई देते हैं। नाटककार मानव जीवन के समन्वयवादी दृष्टिकोणों के सामंजस्य को केन्द्र में रखकर ही सामाजिक चेतना का समग्र दर्शन करा सकता है। नाटक में जिन घटनाओं और प्रसंगों, पात्रों और उसके चरित्रों को प्रस्तुत किया जाता है, उन्हीं के द्वारा समाज के रीति–रिवाजों, रहन–सहन, आचार–विचार और सभ्यता संस्कृति का पता चलता है। नाटककार का अपना एक विशेष दृष्टिकोण होता है, जिसके द्वारा वह घटनाओं और स्थितियों का अवलोकन कर अपने विषय को प्रस्तुत करता है।

नाटक चाहे कैसा भी हो, उसमें व्यक्ति, जाति और समाज विशेष के उत्थान–पतन का निरूपण होता है और काल विशेष के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धर्म–कर्म आदि का भी ज्ञान होता है। इसी कारण सभी का अपना–अपना विषय होता है।

21वीं शती में नारी सजग शक्ति संपन्न, स्वतंत्र एवं आकर्षक व्यक्तित्व को लेकर जीवन के विविध क्षेत्रों में उभरकर आयी है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में नारी की बुद्धिमता, कार्य–कुशलता किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम नहीं है। कानूनी तौर पर नारी के प्रति सम्मान को बढ़ावा दिया जा रहा है। नाटक आत्माभिव्यंजन का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। नाटक के साथ नारी का सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिन्दी–मराठी दोनों भाषाओं के साहित्य का विकास समानान्तर रूप से हो रहा है। दोनों में बहुत समानताएँ होकर भी प्रादेशिक विशिष्टताओं के कारण अपनी–अपनी विशिष्ट समस्याएँ और परिस्थिति अलग रही हैं। इसलिए दोनों भाषाओं में अपनी–अपनी मौलिकताएँ भी हैं।

हिन्दी तथा मराठी भाषाओं का आपस में ऐतिहासिक भौगोलिक सम्बन्ध है। दोनों भाषाएँ, लिपि, साहित्यिक स्रोत तथा आधारभित्ति पर एक दूसरे के निकट हैं। दोनों के साहित्य में विकसित प्रवृत्तियाँ भी मिलती जुलती हैं। 'महाराष्ट्र मानस' के विशेषांक में भी मामा वरेरकरजी ने यह विचार प्रकट किये हैं। महाराष्ट्र में हिन्दी भाषा प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। सन्त नामदेव, एकनाथ से लेकर महादजी शिंदे के समकालीन सोहिराबा आंबिये तक सभी सन्तों ने हिन्दी में भी काव्य रचना की है। कुछ संतों ने मराठी के साथ हिन्दी, गुजराती और कन्नड़ इन तीनों भाषाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मराठी की यह बहुभाषी परंपरा अन्य भारतीय भाषाओं में शायद ही दिखाई देगी।

हिन्दी और मराठी भाषाएँ भारत की समृद्ध भाषाओं में से हैं। दोनों भाषाओं के निकटवर्ती क्षेत्र के कारण सांस्कृतिक, साहित्यिक आदान–प्रदान का कार्य निरन्तर चलता आ रहा है। दोनों भाषाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि में बहुत कुछ समानताएँ भी हैं। इसका अध्ययन करना है। इन समानताओं के बावजूद भी प्रादेशिक विशिष्टताओं के कारण अपनी अपनी विशिष्ट समस्याएँ और परिस्थिति अलग रही है। इसलिए दोनों भाषाओं में अपनी अपनी मौलिकता भी है।

गाँधीजी ने जब आंदोलन द्वारा अपनी सार्वभौम राष्ट्रीयता को विस्तृत किया और इस राष्ट्रवाद की भावना केवल नगरों तक सीमित न रहकर जनसाधारण में तीव्रता से फैल गयी। इससे नारी जागरण का स्वर मुखरित होने लगा। नारी को अपने कर्तृत्व को चुनौती देनेवाला विशाल क्षेत्र दिखायी देने लगा। इन आंदोलनों का प्रभाव युगीन साहित्य पर भी दिखाई देने लगा। मराठी नाट्य साहित्य में 1920 ई. का कालखण्ड महत्त्वपूर्ण है। नाटकों के विषय सामाजिक उत्कर्ष का दर्शकों की भावनाएँ प्रस्फुटित करने का महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता था। साहित्य में जाग्रत महिला का चित्रण होने लगा। 1920 से सन् 1947 ई. तक का कालखंड स्त्री जीवन के बारे में संक्रमण का कालखंड है। परंपरा और नये जीवन में संघर्ष निर्माण हुआ था। इस कालखंड में मराठी नाटककारों ने जाग्रत स्त्री का चित्रण किया है।

हिन्दी साहित्य में द्विवेदी जी के पश्चात् स्वच्छन्दतावादी की एक अजस्र धारा उमड़ पड़ी और उसका प्रभाव हिन्दी के नाट्य साहित्य पर भी पड़ा। प्रसाद जी में भी नारी स्वातंत्र्य विषयक संवेदना जाग्रत थी। प्रसाद जी लिखित नाटकों में नारी स्वातंत्र्य के अनुकूल चरित्र चित्रण किया था।

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटकों में भी नारी जीवन का चित्रण विविध प्रकार से उपलब्ध है। आज इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि अलग–अलग भाषाओं की साहित्यिक एकता के सूत्रों की खोज की जाए। इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन में प्राप्त समानताओं का मूल्य और भी बढ़ जाता है। इससे सांस्कृतिक और भावात्मक एकता का स्पष्टीकरण हो जाता है। प्रस्तुत पेपर में भावात्मक एकता की खोज ही मेरा लक्ष्य रहेगा।

हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु कालीन नाटककारों ने नारी दुर्दशा का भी चित्रण किया है। 'अबला विलाप', 'बालविवाह', 'दुःखिनी बाला।' देवकीनन्दन त्रिपाठी द्वारा रचित 'बालविवाह', 'विधवा विवाह', 'विवाह विडम्बन' 'वृद्धावस्था विवाह' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राधेश्याम कथावाचक ने बहुविवाह प्रथा का संकेत अपने नाटकों में किया है। पुरुष की विलासिता से स्त्री दुःख भोगती है। इसका चित्रण 'शिक्षादान' नाटक में बालकृष्ण भट्ट ने किया है।

प्रताप नारायण मिश्र के 'कलि कौतुक' रूपक में दुश्चरित्र नारी पर तीखा व्यंग्य है। इस कालखंड के नाटकों में सामाजिक शोषण की पृष्ठभूमि में नारी की वेदना एवं पीड़ा को चित्रित किया गया है, पर उसे कहीं भी प्रगतिशील नहीं दिखाया गया है। रघुवीर सिंह ने मनोरंजनीय नाटक लिखा, जो भारतीय महिलाओं के शिक्षार्थ है।

इस तरह इस कालखंड में नाट्य साहित्य में सुधारवादी आंदोलनों के फलस्वरूप नारी पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन है। नाटकों में नारी का तो विद्रोही स्वर क्षीणप्राय पाया जाता है।

मराठी नाटकों का इतिहास प्राचीन एवं वैभवशाली, प्रभावशाली है। 1880 से 1900 के कालखण्ड में किर्लोस्कर तथा देवलजी ने मराठी रंगमंचीय नाटकों की नींव डाली। इस कालखंड में स्त्री शिक्षा, पुनर्विवाह, प्रौढ़ विवाह–इन आंदोलनों का आरंभ हुआ था। स्त्री शिक्षा के बारे में अनुकूल–प्रतिकूल मत–मतांतरी की हवा चल रही थी। उसी समय मोरेश्वर पोतदार लिखित नाटक 'सुशिक्षिता स्त्री' 1886 तथा ना. बा. कानिटकर लिखित 'तरूणी' शिक्षण नाटक प्रसिद्ध हुए। पहले नाटक में स्त्री शिक्षा का समर्थन तथा दूसरे में स्त्री शिक्षा का विरोध तीव्रता से दर्शाया गया था।

'सौभाग्य रमा' नाटक में वैधव्य, दुःख तथा अंत में नायिका का पुनर्विवाह दिखाकर एक नया विचार प्रस्तुत किया गया। दहेज प्रथा ने इस कालखंड में विकराल रूप धारण किया था। दहेज प्रथा संबंधी नारायण हरि भागवत का नाटक 'हुंडा प्रहसन' विख्यात है और 'शारदा' नाटक उस कालखंड के बालविवाह, अनमेल विवाह समस्या पर कड़ा प्रहार करता है। यह नाटक अत्यंत प्रभावशाली एवं गतिमान है।

स्त्री शिक्षा प्रचार के लिए लिखे हुए नाटकों में बालकृष्ण दिनकर वैद्य लिखित 'शुर स्त्री प्रभाव', कोल्हटकर लिखित 'गुप्तमंजुष', वामन मंगेश

लिखित 'प्रेम निराशा' आदि नाटक है। मराठी के कई नाटक तो केवल नायिका प्रधान है। जैसे केलकर लिखित 'चन्द्रसेना भुवन सुन्दरी' धामलकर लिखित 'नंदकुमार', टिपणीस (टिप्पणी) लिखित 'कमला' आदि।

मराठी नाट्य विश्व में श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर नये युग के निर्माता हैं। 'विरतनय' नाटक में विधुर–विवाह का पुरस्कार किया गया है। 'गुप्त–मंजुष' नाटक में स्त्री–शिक्षा की चर्चा की गयी है। 'मतिविकार' नाटक में पुनर्विवाह का समर्थन है। 'प्रेमशोधन' नाटक में अनमेल विवाह के दुष्परिणाम दिखाये गये हैं। 'जन्म रहस्य' नाटक में मिश्र विवाह का समर्थन है। कल्हटकरजी के नाटकों ने रंगमंच पर क्रांति निर्माण की।

राम गणेश गडकरी ने 'प्रेम संन्यास' नाटक में सामाजिक रचना के कारण निर्मित हुई स्त्री–पुरुषों की जटिल समस्याओं का चित्रण किया है। विषम–विवाह, बाल–विवाह, प्रेम–विवाह, राक्षस विवाह आदि विवाहों के विविध प्रकार नाटक में वर्णित है। तो 'एकच प्याला' नाटक में सिंधु और गीता के परस्पर विरोधी स्वभाव के चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। संपन्न परिवार की पत्नी सिंधु सुशिक्षिता है। उत्कृष्ट प्रेम करनेवाली पति के दुर्गुणों को दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास करनेवाली सिंधु भारतीय नारी का उज्ज्वल रूप है। उसकी सत्यनिष्ठा स्वावलंबन से तो नाटक की उदारता अधिक बढ़ जाती है। उसका आत्मसमर्पण उसे पतिव्रताओं की श्रेणी में पहुँचाता है।

सिन्धु गीता, शरद आदि नारी पात्रों के द्वारा गडकरीजी ने समाज में व्याप्त बाल–विवाह, विधवा–विवाह, प्रेम–विवाह, स्त्री–शिक्षा आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। गडकरी लिखित 'भावबंधन' नाटक को भी अभूतपूर्व यश प्राप्त हुआ। लतिका, मालती, इंदू, बिन्दु आदि पात्रों के द्वारा स्त्री जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस नाटक में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से या पुस्तकीय शिक्षा से युवा स्त्री–पुरुषों में एक गैर जिम्मेदार औघलय वृत्ति निर्माण हुई थी, उसी का चित्रण है।

संक्षिप्त कहें, इस कालखंड पर प्रभाव डालनेवाले गडकरी जी के नाटकों में प्राय: नायिकाओं का प्राधान्य रहा है। नायिकाओं की सत्त्वशक्ति वृत्ति से प्रतिनायक की पराजय दिखायी गयी है।

'प्रेम सन्यास' में लीला को अंत में मरणासन्न दिखाया गया है, किन्तु जयन्त का मन वह अंत में जीत लेती है। पुण्य प्रभाव नाटक में पाषाण हृदयी वृंदावन में मन परिवर्तित होकर वह वसुंधरा के चरण–स्पर्श करता है तथा उसे 'माता' कहता है। सिंधु की मृत्यु के पश्चात् सुधाकर को उसकी महनीयता समझ में आती है, यहाँ भी सिंधु की विजय समझ में आती है। सन् 1920 ईसवी तक का कालखण्ड मराठी नाट्य सृष्टि का प्रभावी कालखंड था।

1920 से 1947 ये कालखंड रंगमंच पर नये युग का सूत्रपात करनेवाला उथल–पुथल का रहा। रंगमंच पर नारी जीवन की विभिन्न विभिषिकाओं के विविध रूप हैं। विभिन्न समस्याएँ हैं। पुरुष के अहंकार से नारी हर क्षेत्र में संघर्षरत रही है। नारी के उद्धार में कानून के साथ–साथ साहित्य का भी योगदान है। इस
कालखंड में नाटकों पर मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव रहा। इस कारण नारी जीवन के विविध पहलुओं मनोज्ञ दर्शन इस कालखण्ड के नाटकों में पाए जाते हैं। स्त्री चरित्रों से सामाजिक जीवन कहाँ तक प्रभावित हुआ है।

जयशंकर प्रसाद जी अपने युग के नारी स्वातंत्र्य के सबसे बड़े समर्थक थे। उनके नाटकों में अभिव्यक्त नारी विद्रोह सामाजिक न होकर काव्यात्मक तथा मनोवैज्ञानिक है। प्रसाद जी के अधिकांश नाटकों में नारी ही पुरूष की प्रेरणादायिनी शक्ति है। प्रसाद जी ने नारी को आदर सम्मान तथा श्रद्धा के रूप में देखा है और अपने नाटकों में नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्रा जी ने अपने नाटकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। मिश्रजी के नारी पात्रों ने प्राचीन संस्कृति का पर्दा हटा दिया है। उनके नारी पात्र वास्तिवकता के धरातल पर जीते हैं। 'संन्यासी' नाटक में आधुनिक विचारधारा को देखा जा सकता है। उच्च शिक्षा से निर्मित जटिल समस्याओं से ग्रस्त नारीजीवन का यथार्थ चित्रण संन्यासी में दिखाई देता है। 'राक्षस का मंदिर' में नारी जीवन संयम से न बँधा हो, तो पुरुष उसे पतन की ओर खींचते ले जाता है। तो आधुनिक युवती के रूप में मिश्राजी ने 'मुक्ति का रहस्य' में आशा देवी का चित्रण किया है। इनके नाटकों में पाश्चात्य अंधानुकरण से उत्पन्न परिस्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत नाट्यकृति में आशा देवी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यथार्थवादी धरातल पर लिखे गये मिश्रजी के नाटकों में बौद्धिक स्तर पर विचारों की तीव्रता अधिक मात्रा में है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के अधिकतर नाटक मध्यमवर्गीय जीवन की सामाजिक और पारिवारिक विविध समस्याओं पर आधारित है। नारी के प्रति अश्क के मन में असीम श्रद्धा और अगाध वेदना है। इन्होंने विवाह और प्रेम की समस्या पर आधारित विविध संस्कारोंवाली नारियों के चित्र खींचे हैं। आधुनिक सुशिक्षिता नारी के गुण दोनों की चर्चा भी स्वर्ग की झलक में दिखाई देती है। अलग–थलग रास्ते की राजी इसी का प्रतीक है। अपमान को न सहते हुए अपनी योग्यता के बल पर मान पाना चाहती है। कैद की अपनी पुरानी रूढ़ियों से ग्रस्त है। पुरानी परंपरा का और आधुनिकता का अपूर्व सांमजस्य अश्क जी के नाटकों में अभिव्यक्त हुआ है।

मराठी नाटकों में सुधारवादी दृष्टिकोण को देखते हैं। हिन्दी और मराठी साहित्य नारी विषयक परंपरावादी और क्रांतिकारी दोनों दृष्टियों से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। मराठी नाटककारों ने
प्राय: नारी को नारी विषयक समस्याओं को प्राधान्य देकर नाटक लिखे हैं।

साहित्य में भी समाज दायित्व की भावना तीव्रतर हो गयी थी। देशभक्ति के साथ नारी जागरण का स्वर ऊँचा उठा है। मराठी के प्रमुख नाट्यकार बिट्ठल वरेरकर, वीर वामनराव जोशी, केशव अत्रे मा. ग. रांगणेकर, स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर, वासुदेव भोले इ. मराठी नाटकों की विशेषता स्त्री नाटककारों का योगदान है। इन्होंने प्राय: नारी जीवन को प्राधान्य देकर नाट्य रचना की है। वरेरकरजी लिखित 'हाच मुलाचा बाप' इस नाटक में बाल–विवाह के दुष्परिणामों को दिखाया है। मंजिरी
विद्रोही नारियों की प्रतिनिधि बनकर नाटक में उपस्थित है। वह सिद्ध करती है कि बुद्धिमता में नारी पुरुषों से कम नहीं है। महाराष्ट्रीय मध्यमवर्ग के नारी जीवन का यथार्थ चित्रण इस नाटक में है। 'पापी पुरुष' नाटक में यह समस्या प्रस्तुत की गयी है कि दयनीय परिस्थिति में कुमार्ग अपनानेवाली महिलाओं को भी समाज में समानता से रहने का अधिकार है।

वीर वामनजी के नाटकों में अभिव्यक्त नारी जीवन की विशेषता यह रही है कि वैयक्तिक समस्याओं को देशभक्ति के प्रखर प्रकाश में गौणत्व प्राप्त हुआ है। और नायिकाएँ पुरुष पात्रों के समान है। नारी जीवन का एक तेजस्वी रूप चित्रित किया है।

अत्रेजी के नाटकों में अभिव्यक्त नारी जीवन भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण है। जागृत नारी का दर्शन अंग्रेजी के नाटकों द्वारा प्राप्त होता है, किन्तु आधुनिकता के स्पर्श से ये जागृत नारी भी भारतीय संस्कृति को भूला नहीं पाती। स्त्री मुक्ति का भी वे समर्थन करते हैं। आत्मसम्मान की भावना, देश के प्रति अपने कर्तव्य की भावना से परिपूर्ण नारी का चित्रण अत्रेजी ने किया है।

वि. दा.सावरकरजी की राष्ट्रनिष्ठा, देशोन्नति के लिए नारी स्वातंत्र्य के लिए छटपटानेवाले वे भी थे। देश के कोने–कोने में नारी का तेजस्वी रूप जागे, वह स्वयं पूर्ण हो, अपनी रक्षा स्वयं करे सुधारक यही संदेश सावरकर जी के नाटकों से प्राप्त होता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि, हिन्दी और मराठी भाषी प्रदेश में निकटता के कारण साहित्यिक, सांस्कृतिक आदान– प्रदान तो सहजता से हो सकता है। सांस्कृतिक एकता, समान समस्याओं को देखा जा सकता है। हिन्दी–मराठी नाटकों में मध्यमवर्गीय समाज विशेष रूप से प्रभावित किया। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से और समाज सुधारकों के अथक प्रयास से नारियों में जागृति निर्माण हुई। हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रसाद से लेकर आज के अनेक

नाटककारों तक नारी जीवन का चित्रण विविध रूपों में हुआ। मराठी भाषी क्षेत्र में यही नारी जीवन आज के नाटककारों तक उसी तरह अभिव्यक्त है। नारी जीवन की यह अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं में प्रभावी हुई है। हिन्दी भाषी नाटककारों ने प्रौढ़ कुमारियों की समस्या का चित्रण नहीं किया। मराठी नाटककारों ने नारी की विवशता, मानसिक उत्पीड़न को शब्दांकित किया है। नारी शिक्षा के प्रति हिन्दी नाटकों में अनुकूलता नहीं दिखाई गयी है। मराठी नाटकों में भी व्यंग्यात्मक आलोचना की गयी है।

हिन्दी मराठी नाटकों में कुमारी माता की मनोदशा का चित्रण किया है और विवाह का उपाय सुझाया है। इसके साथ दहेज प्रथा का चित्रण भी है। बाल–विधवा का चित्रण हिन्दी के नाटक में कम हुआ, मराठी नाटकों में नहीं है। अनमेल विवाह का वर्णन दोनों भाषाओं में है। विधवाओं की दयनीय अवस्था का चित्रण है। वेश्याओं के प्रति सहानुभूति है। विद्रोही नारी का चित्रण केवल अश्कजी ने किया है। मराठी में अनेक नाटकों में नारी का यह विद्रोह रूप चित्रित हुआ है।

नारी के सुकोमल रूप के साथ–साथ उसका महत्त्वकांक्षी कुटिल रूप हिन्दी मराठी नाटकों में यथार्थ रूप में वर्णित है। एवं देशभक्ति नारी का चित्रण भी हुआ है। नाटक का संबंध समाज से अधिक निकट होता है। लोकरंजन और लोकशिक्षा की क्षमता नाटक में अत्यधिक है।

आधार ग्रंथ–

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन– डॉ गणेशन
2. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर
3. नाटककार उदयशंकर भट्ट– डॉ. मनोरमा शर्मा ।
4. आधुनिक हिन्दी नाटक–डॉ. नगेन्द्र
5. हिन्दी मराठी नाटकों में नारी–डॉ वसुंधरा जोशी
6. साठोत्तर हिन्दी नाटक– डॉ. नीलम राठी।

लघुकथा

सूर्यास्त

मौसमी चन्द्रा
वाराणसी (उ.प्र.)

8/8 के उस छोटे से कमरे में केवल एक लोहे का बेड था. जिसपर पतली–सी प्लास्टिक की गद्दी बिछी थी। इसी बिस्तर पर लेटी थी वो... सन से उजले बाल जर्जर शरीर।

बिस्तर से जुड़े रॉड में स्लाइन की बॉटल झूल रही थी। पाइप का एक सिरा बॉटल से और दूसरा उसकी सिकुड़ी हुई चमड़ी में धँसा था. सुई के आसपास खून के कुछ सूखे धब्बे थे। पास ही एक छोटा–सा स्टूल था, जिसपर वो बैठा था। चटियल सा कुर्ता सूती साफा बाँधे... टुकटुक अपनी बुढ़िया को निहारता।

'रोटी खा...ई।'

बुढ़िया ने धीरे से पूछा।

'खा लूँगा।'

कहकर बूढ़े ने अपने पोपले गाल दूसरी तरफ घूमा लिए।

'तू खायेगी कुछ?'

उसके पूछने पर बुढ़िया हँसी। हँसी का शोर भीतर अधिक था। एक–एक साथ सारी नसें उभरी और चेहरे पर जम गई, जिसने पिछले दस दिन से अन्न का एक दाना न चबाया हो, उसे ऐसे सवाल पर हँसी तो आयेगी ही।

उसने पाइप की ओर इशारा करते हुए कहा–

'खा तो रही हूँ मैं।'

बूढ़ा फिर खिड़की की ओर ताकने लगा।

ये खिड़कियाँ बड़ी करामाती होती हैं, जब आपका दिमाग शून्य होता है, तब ये कारगर होती हैं। ताकते रहो चुपचाप... कुछ–न–कुछ दिख ही जायेगा अतीत का।

खिड़की के बाहर बूढ़े की पगडंडियाँ दिखी...

उन्नीस साल का छोरा सोलह साल की छोरी को ब्याह कर लाता हुआ। पीछे–पीछे गाँव की औरतें गीत गाती....

ये जी उगतऊ सुरुज बहुते नीक लागय
अतवत लाल दुल्हिनअ लेके आगेल
ये जी....

भर हाथ ताल लहठी... सुनहरे गोटे वाली टुसटुस लाल साड़ी, पैरों में मोटा आलता, चांदी की पायल, चांदी के झुमके....

वो छोरा दुनिया का सबसे दौलतमंद इंसान.... काहे कि उसकी छोरी उसके साथ थी।

खिड़की के बाहर फिर बच्चे दिखे... हँसते–खेलते....

उसकी झोली भरती गई....

अब बच्चे बड़े हो गए थे.... गाँव की पगडंडियाँ और संकरी। एक–एक कर बच्चे इन पगडंडियों से गुजरकर शहर की चौड़ी सड़कों पर चले गए.... बूढ़े की झोली छोटी होती गई।

खिड़की के बाहर अब उसके गाँव का बूढ़ा बरगद दिख रहा था... पोखर के पास वाला खूब हरा–भरा बरगद।

लोगों के घर बड़े हुए और बरगद सिकुड़ने लगा... अब उसे ये याद नहीं, कितने बसंत आए और कितने गए...उस पेड़ पर पतझड़ आकर ठहर गया था। थोड़े पीले पत्ते बचे थे बस।

सुनो,

आवाज सुनकर बूढ़ा पलटा!

'मुझे कितने दिन रखेंगे यहाँ?'

'क्यों?घर की याद आ रही है क्या?' बूढ़े ने पूछा

उसने ना में सिर हिलाया।

'अब कौन–सा घर?कौन–सा द्वार?जितने दिन ढिबरी जलानी थी... जला दी, अब तो...

बूढ़े ने उसकी दोनों हथेलियाँ अपनी हाथों में कसकर दबा ली। कुछ बोलने को कंठ काँपा, पर आवाज अंदर ही घुट गई।

''मैं कह रही थी... इन सुई दवाइयों में पैसे फूँक रहे बेफालतू! घर ही ले चलो। ऐसे भी आज जी बड़ा घबरा रहा। लेटे–लेटे मन भी ऊब गया....।''

घबरा मत! तू अच्छी हो जायेगी। मेरा दिल... कहता है....।

अंतिम वाक्य बोलते हुए उसकी आवाज लड़खड़ा गई। झूठ बोलना आसान थोड़े होता है।

'उठकर बैठेगी थोड़ी देर। लेटे–लेटे ऊब हो ही जाती है।'

'हूँ'

बूढ़े ने धीरे से उसे उठाकर बिस्तर से टिका दिया। उसका माथा सहलाने लगा। वो उसे देखती रही...विदाई की बेला करीब थी.. अपने प्रिय से बिछड़ने की पीड़ा.. .आँखों से टपकने लगी...पतली धार अनगिनत झुर्रियों को पार कर ठोड़ी पर आकर ठहर गई।

उसने अपना सिर बूढ़े के कांधे पर टिका दिया।

बूढ़ा फिर खिड़की के बाहर देखने लगा...सब स्थिर था...शांत! गर्दन पर सांसों की फड़फड़ाहट मध्यम होने लगी....

एक झटके से बरगद की पीली पत्तियां जमीन पर झड़ गई.. पोखर के किनारे वाला बरगद ठूंठ खड़ा था...

शोध आलेख

विदेशों में हिंदी की संभावनाएँ और भविष्य

डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'
वैश्विक हिंदी सम्मेलन के निदेशक एवं गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग के पूर्व क्षेत्रीय उपनिदेशक
मोबाइल सं. 09869374603

आजकल देश की बजाय विदेशों में हिंदी की चिंता कुछ ज्यादा ही है। भारत में हिंदी और भारतीय भाषाओं का क्या हाल है और क्या होगा?इसके बजाय विदेशों में हिंदी से जुड़ी संगोष्ठियाँ ज्यादा होती दिखती हैं। सोचा, चलो आज इसी पर बात कर ली जाए। भारत की 2011 ई. की जनगणना के अनुसार भारत के 57.1 प्रतिशत भारतीय हिंदी जानते हैं, जिनमें से 45.67 प्रतिशत भारतीय लोगों ने हिंदी को अपनी मातृभाषा घोषित किया था। इसके अलावा भारत–पाकिस्तान सहित विभिन्न देशों में करीब चौदह करोड़, दस लाख लोगों द्वारा उर्दू सहित हिंदुस्तानी भाषा के रूप में हिंदी बोली जाती है। हालाँकि अनेक विद्वानों का मानना है कि पूरे विश्व में प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में हिंदी
बोलनेवालों और समझनेवालों के आँकड़ों को मिलाकर देखें, तो हिंदी विश्व की सर्वाधिक प्रयोग में आनेवाली भाषा है।

'विदेशों में हिंदी' इस विषय पर आजकल अनेक संगोष्ठियाँ होने लगी हैं। प्रवासी साहित्य भी खूब चर्चा में है। यही नहीं कुछ विश्वविद्यालयों में तो प्रवासी साहित्य को पाठ्यक्रम में भी शामिल किया गया है। 'विदेशों में हिंदी' विषय पर भारत में आए दिन अनेक संगोष्ठियाँ व परिचर्चाएँ होती हैं। ज्यादातर कार्यकर्मों और संगोष्ठियों में अक्सर विद्वान वक्ता ऐसे आँकड़े बड़ी ही खूबसूरती से पेश करते हैं, जिनसे लगता है कि हिंदी बड़ी तेजी से विश्व में अपने पाँव पसारती जा रही है। हिंदी की ऐसी मनमोहक छवि से प्रभावित हिंदी प्रेमी श्रोताओं के मन को भी बहुत शांति मिलती है, चलिए कोई बात नहीं, भारत में न सही विश्व में तो हिंदी तेजी से फैल ही रही है। हो सकता है, कभी इसी तरह लौटकर भारत में भी ऐसे ही फैले। इस प्रकार एक बहुत ही खुशनुमा और आशावादी माहौल में विश्व में हिंदी की चमकदार तस्वीर लिये लोग अपने घर लौट जाते हैं। हिंदी के प्राध्यापक और विद्यार्थी भी इन व्याख्यानों से अपने लिए कुछ–न–कुछ ऐसा खोज ही लेते हैं, जो हिंदी की स्थिति पर होनेवाली चर्चाओं में एक ढाल की तरह उनके काम आ सके। वे अक्सर आँकड़ों के मकड़जाल में फँसकर विश्व में हिंदी के प्रसार की एक ऐसी तस्वीर अपने मन में बसा लेते हैं, जो कई बार यथार्थ से काफी दूर होती है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हिंदी प्रचार को लेकर विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए आँकड़े गलत होते हैं, बल्कि मैं यह कह रहा हूँ कि उन आँकड़ों के माध्यम से जो तस्वीर बनाई जाती है, वह एकतरफा होती है और अक्सर वैसी नहीं होती, जैसी वास्तव में है।

जब विदेशों में हिंदी की बात आती है तो उसकी स्थिति को समझने के लिए मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक है–साहित्य लेखन और दूसरा है हिंदी का प्रचार–प्रसार और प्रयोग। भाषा की दृष्टि से दोनों का पारस्परिक संबंध होने के बावजूद दोनों में एक बड़ा अंतर है। केवल हिंदी साहित्य लेखन से किसी देश में हिंदी के प्रचार–प्रसार की स्थिति को समझना संभव नहीं है। अगर उसके माध्यम से समझना भी है तो यह देखना होगा कि उस भाषा के साहित्य के पाठकों और श्रोताओं का कितना बड़ा वर्ग है, जो उसका रसास्वादन करता है। विदेशों में हिंदी की संभावनाओं और भविष्य को जानने के लिए अनेक लोग साहित्य को ही आधार मानकर चलते हैं। विदेशों में हिंदी साहित्य लेखन में भी दो वर्ग बने हुए हैं।

विदेशों में लिखे जानेवाले साहित्य में भी मोटे तौर पर दो वर्ग हैं–पहला वह जो कि आज से सौ–दो सौ साल पहले गिरमिटिया मजदूर बनकर या उसके पहले भी किन्हीं कारणों से विदेशों में जाकर बसे भारतीयों के वंशजों द्वारा लिखा जानेवाला, जो वहाँ के स्थाई निवासी हो गए। दूसरा वह वर्ग है, जो स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा–रोजगार आदि के लिए वहाँ पहुँचा है। दोनों की स्थितियाँ और साहित्य में भी बड़ा अंतर है। पिछले कुछ दशकों में जो भारतीय वहाँ पहुँचे हैं, अब उनकी भी कई पीढ़ियाँ आ चुकी हैं और वह भी धीरे–धीरे प्रवासी से अप्रवासी होते जा रहे हैं। जो एक बार वहाँ गया और जाकर बसा, अक्सर फिर लौटकर आना संभव नहीं हो पाता।

विदेशों में लिखे जानेवाले साहित्य को हम सामान्यतः प्रवासी साहित्य कहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कई सौ वर्ष पूर्व विदेश गए भारतवंशियों और स्वतंत्रता के पश्चात् वहाँ गए भारतीयों द्वारा भी विभिन्न देशों में प्रचुर मात्रा में हिंदी साहित्य सृजन का कार्य हुआ है। हालाँकि उत्कृष्ट और सामान्य साहित्य के आलोचकों की अपनी–अपनी परिभाषाएँ और पैमाने हैं; लेकिन विदेशों में अनेक हिंदी साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य लेखन में खासा नाम और प्रतिष्ठा अर्जित की है। लेकिन अगर साहित्य के पाठकों और उसका रसास्वादन करने की बात की जाए तो स्थिति एकदम प्रतिकूल दिखाई देती है। भारतीयों द्वारा कभी–कभार आयोजित होनेवाले कवि सम्मेलनों के आयोजनों को छोड़ दें, तो सामान्य जन का हिंदी साहित्य से कोई खास संबंध नहीं दिखता। इस स्थिति मॉरीसस के साहित्यकार रामदेव धुरंधर के वक्तव्य से समझा जा सकता है, जो 2018 में हिंदी साहित्य के लिए दिये जाने वाले प्रतिष्ठित इफ्फको पुरस्कार से सम्मानित होकर मुंबई में 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' के कार्यक्रम में अपनी बात रख रहे थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा–''मैं वहाँ शब्द बोता हूँ और भारत में
उनकी फसल काटता हूँ।'' उनके मन्तव्य को आसानी से समझा जा सकता है। मुझे लगता है कि ज्यादातर प्रवासी और अप्रवासी साहित्यकार कमोबेश यही करते हैं। यहाँ लेकिन जब भारत के साहित्यकारों के साहित्य की फसल ही कटकर बिक नहीं पाती, तो देश और विदेश में हिंदी साहित्य की स्थिति को समझा जा सकता है।

ऐसा नहीं है कि विदेशों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन या साहित्य लेखन नहीं हो रहा, बल्कि वह हो रहा है। उसमें भी कई ऐसे साहित्यकार, लेखक आदि हैं, जिनका साहित्य विश्वस्तरीय है। यह बात सही है कि विदेशों में भी वहाँ रह रहे भारतीयों और भारतवंशियों द्वारा भी भाषा साहित्य को बचाने, बढ़ाने के लिए सरकारी, संस्थागत व व्यक्तिगत स्तर पर अनेक संस्थाएँ व मंच बनाए गए हैं। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि विदेशों में बसे भारतीय, जिनमें हिंदी के विद्वानों और साहित्यकारों के अतिरिक्त हिंदी भाषा साहित्य प्रेमी विभिन्न क्षेत्रों के अनेक विशेषज्ञ भी हैं, जो चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रबंधन, वित्त आदि क्षेत्रों व व्यवसायों से जुड़े हैं, उनकी हिंदी के प्रति निष्ठा और निस्वार्थ सेवाभाव के साथ हिंदी को देश–विदेश में स्थापित करने की ललक कहीं ज्यादा है। हालाँकि विदेशों में यह अपेक्षा करना थोड़ी ज्यादती होगा कि हिंदी वहाँ के कामकाज की भाषा बने; लेकिन इतनी अपेक्षा

तो की ही जा सकती है कि हिंदी भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों विशेषकर हिंदी भाषियों के पारिवारिक संवाद और पारस्परिक संपर्क के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक व आध्यात्मिक प्रयोजनों तथा अपने देश से और अपनी जड़ों से जुड़े रहने का माध्यम बनकर आगे बढ़े।

हिंदी के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से भी दो महत्त्वपूर्ण आयाम हैं, एक है–हिंदी अध्ययन–अध्यापन का और दूसरा है– उसके प्रयोग का। जहाँ तक विदेशों में हिंदी शिक्षण का संबंध है, विदेशों में लगभग 154 देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इनमें अप्रवासी भारतीयों के अलावा स्थानीय छात्र भी हिंदी का अध्ययन करते हैं। हिंदी के अध्ययन का यह बड़ा कारण है–भारतीयों और भारतवंशियों द्वारा अपने देश और वहाँ की धर्म संस्कृति से जुड़े रहना और नौकरी तथा व्यावसाय की दृष्टि से इसकी आवश्यकता है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार का, हिंदी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण कारण है वैश्विक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संबंध। भारत न केवल विपुल जनसंख्या वाला एक बड़ा देश है, बल्कि एक बड़ा शक्तिशाली देश है। परस्पर आर्थिक, सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ाने के उद्देश्य से विश्व के अनेक देशों में हिंदी सीखी व सिखाई जाती है। भारत के साथ अपने राजनैतिक कूटनीतिक और आर्थिक संबंध साधने के लिए भी विश्व के अनेक देशों के लिए यह आवश्यक है कि भारत की राजभाषा हिंदी सीखें। चीन आर्थिक और सामरिक मोर्चे के साथ–साथ सांस्कृतिक मोर्चे पर हमें पटकनी देने और अपने हितों को साधने के लिए पिछले कुछ समय से हिंदी को अपना हथियार बना रहा है। इस समय चीन में हजारों जवान ऐसे हैं, जो हिंदी के कुछ वाक्य बोल और समझ सकते हैं। भारत–चीन सीमा पर तैनात चीनी जवानों को हिंदी इसलिए सिखाई जाती है कि वे हमारे जवानों और नागरिकों से सीधे बात कर सकें। उनका हिंदी–ज्ञान उन्हें जासूसी
करने, भारतीय जवानों को धमकाने, चेतावनी देने, पटाने में उनकी खासी मदद करता है। चीन से भारत में काफी आयात होता है। भारतीय आयातक व्यापारियों से संवाद के लिए भी बड़ी संख्या में चीन के लोग हिंदी सीखते और बोलते हैं। इसके चलते चीन के लगभग 20 विश्वविद्यालयों में बाकायदा हिंदी पढ़ाई जाती है। ऐसे अनेक उद्देश्यों से विश्व के अनेक देशों के लोग विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने भारत आते हैं। भारत में विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा सहित कई संस्था में और विश्वविद्यालयों में भी इस प्रकार की सुविधाएँ हैं। मुंबई में महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' में भी अनेक देशों के लोग हिंदी व उर्दू सीखने के लिए आते हैं। विभिन्न देशों में ऐसे अनेक विदेशी विद्वान हैं, जो न केवल हिंदी
में पारंगत हैं, बल्कि अपने देश में हिंदी अध्यापन से भी जुड़े हैं। कई विदेशी विद्वान हिंदी की विशिष्टता की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने इस भाषा पर अपना प्रभुत्व सिद्ध किया है।

सदियों से धर्म, अध्यात्म, ज्ञान और व्यापार आदि कारणों से भारत के लोग विदेशों में और अन्य देशों के लोग भारत में आते जाते रहे हैं। लेकिन बड़े पैमाने पर भारत के लोगों के विदेशों में जाकर बसना 19वीं सदी में और 20वीं सदी के प्रारंभ में हुआ, जब ब्रिटिश शासक अपने उपनिवेशों में विकास और वहाँ की प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए यहाँ से मजदूरों को लेकर गए। एग्रीमेंट करके गए ये मजदूर आगे चलकर गिरमिटिया मजदूर कहलाए। ये गिरमिटिया मजदूर ही आगे चलकर भारतीय भाषा संस्कृति के प्रमुख विश्वदूत बने। ये मजदूर उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु सहित भारत के कई हिस्सों से जाकर वहाँ बसते थे; लेकिन इनमें सर्वाधिक संख्या उत्तर प्रदेश और बिहार के मजदूरों की थी। इन गिरमिटिया मजदूरों के वंशज, ये भारतवंशी इतने वर्ष बाद भी भावनात्मक रूप से अपने पूर्वजों के धर्म और संस्कृति से जुड़े हैं। हालाँकि ये सभी देश भौगोलिक दृष्टि से बहुत दूर–दूर स्थित है। इसके बावजूद बहुत सारी बातें इनमें लगभग समान पाई जाती हैं। इनका हिंदी–प्रेम मुख्यतः अपनी जड़ों से जुड़ने की ललक और अपने धर्म संस्कृति के प्रति लगाव रहा है। इन सभी देशों में रामायण के प्रति अगाध श्रद्धा है और आज जबकि उन्हें वहाँ गए हुए कई पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं, वे धर्म और संस्कृति के प्रति लगाव के चलते वहाँ हिंदी सीखते– सिखाते हैं। आज जबकि भारतवासियों के जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं, लेकिन इन देशों में गए भारतवंशी आज भी कहीं–न–कहीं उसी जीवनधारा का अनुसरण करते–से दिखते हैं। आज भी इनके नाम प्रायः वही है, जो हमारे यहाँ सौ–दो सौ साल पहले थे। भाषा के स्तर पर भी इनकी भाषा में तत्कालीन अवधी भोजपुरी जैसी बोलियों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। अपने धर्म–संस्कृति और पूर्वजों के देश भारत से लगाव के कारण इन देशों में बड़े पैमाने पर हिंदी शिक्षण का कार्य होता है। प्रो. विमलेशकांति वर्मा लिखते हैं कि इन देशों में हिंदी शिक्षण का कार्य सर्वप्रथम मिशनरियों ने शुरू किया। उनका उद्देश्य हिंदी के माध्यम से भारत से गए हिंदुओं को ईसाई बनाना था। हिंदी के प्रति प्रवासी भारतीयों का जो भावनात्मक लगाव था उसके कारण वे हिंदी सीखना चाहते थे।

जिस प्रकार मॉरीशस में हिंदी के लिए 'महात्मा गाँधी संस्थान' हैं, वैसे ही दक्षिण अफ्रीका में 'हिंदी शिक्षा संघ' है। 'हिंदी शिक्षा संघ' की पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर उषा शुक्ला कई वर्ष पूर्व जब 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' के कार्यक्रम में भाग लेने मुंबई आई तो उन्होंने बताया कि 'हिंदी शिक्षा संघ' द्वारा दक्षिण अफ्रीका में 55 स्थानों पर हिंदी पढ़ाई जाती है। 'हिंदी शिक्षा संघ' के कार्यकर्ता सेवा भाव से हिंदी शिक्षण कार्य करते हैं। ये कार्यक्रम स्कूल समय के पश्चात् अथवा साप्ताहिक रूप से चलाए जाते हैं। 'हिंदी शिक्षा संघ' द्वारा वहाँ एक रेडियो स्टेशन भी स्थापित किया गया है, जहाँ हिंदी और भारतीय भाषाओं के गीत व अन्य कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं। हिंदी फिल्मों के गीतों और कार्यक्रमों से वहाँ हिंदी प्रसार में बहुत मदद मिलती है। वे कहती हैं हिंदी प्रसार व शिक्षण के कार्य में 'हिंदी शिक्षा संघ' का प्रमुख उद्देश्य भारतीय संस्कृति और संस्कारों की रक्षा है। इस दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका के 'हिंदी शिक्षा संघ' की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जहाँ भारत से गए मजदूरों के वंशज बड़े ही सेवाभाव के साथ हिंदी शिक्षण का कार्य करते हैं।

लेकिन अगर प्रचार–प्रसार और व्यवहार की दृष्टि से विदेशों में हिंदी की स्थिति की बात की जाए तो स्थिति वैसी नहीं लगती जैसी कि दिखाई जाती है। अपने धर्म–संस्कृति से लगाव के बावजूद और विदेशों में भारतीयों के प्रवास की संख्या में निरंतर वृद्धि के बावजूद हिंदी का अपेक्षित प्रसार होता नहीं दिखता। जोहान्सबर्ग में 'हिंदी शिक्षा संघ' के सहयोग से नवें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भारतवंशियों का एक जत्था 'हिंदी शिक्षा संघ' के नेतृत्व डरबन और नाटाल से आया था, जहाँ अधिकांश भारतवासी प्रारंभ से बसे हुए हैं। सम्मेलन के बाद जब वे वापस लौटे, तो मैं भी उनके साथ था। मैंने पाया कि उस जत्थे में ऐसे लोग भी थे, जो हिंदी कम समझते थे या बिल्कुल नहीं समझते थे। उनके लिए हिंदी का सम्मेलन केवल हिंदी का सम्मेलन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का और भारतीयता का सम्मेलन था, जहाँ वे भारत की धर्म–संस्कृति से जुड़ने आए थे। जोहान्सबर्ग से डरबन के करीब दस घंटे के सफर में रास्ते भर उन्होंने रोमन लिपि में छपी हुई हिंदी भजनों की पुस्तक से ऐसे–ऐसे धार्मिक भजन गाए कि सब भाव–विभोर हो गए और उसके बाद हिंदी फिल्मों की अंत्याक्षरी ठीक वैसे ही शुरू हुई, जैसे कि किसी पिकनिक में भारतवासी लोग अंत्याक्षरी खेलते हैं। उनका सम्मेलन के बहाने भारत और भारतीयता से जुड़ाव अद्‌भुत था और पता लगा कि हिंदू धर्म–संस्कृति और

गीत–संगीत से लगाव–जुड़ाव के बावजूद अब भी ज्यादातर लोग हिंदी समझ भी नहीं पाते।

ज्यादातर भारतवंशियों 'रामचरितमानस' पढ़ने और अपने धर्म और संस्कृति से जुड़ने के लिए हिंदी सीखते हैं। यहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी की विभागाध्यक्ष रह चुकी प्रो. उषा शुक्ला बड़ी ही साफगोई से स्वीकार करती हैं, ''हिंदी के प्रति जो रुझान पहले था, वैसा अब नहीं रहा। विश्वविद्यालय ने भी हिंदी विषय को अब हटा दिया है। इस कारण उन्हें अपनी सेवा के अंतिम कई वर्ष हिंदी के बजाय अंग्रेजी विषय पढ़ाना पड़ा। जो लगाव है, वह भारत से और भारत की संस्कृति से है। जब भारत में ही लोग हिंदी
को उतना पसंद नहीं कर रहे, तो दक्षिण अफ्रीका में यह कैसे होगा?''

भारतवंशियों का सर्वाधिक प्रतिशत अगर किसी देश में है, तो वह मॉरीशस में है। मॉरीशस के साहित्यकार राज हिरामन से दो बार हिंदी संगोष्ठियों में मुलाकात हुई है। चर्चा में उन्होंने बताया कि वहाँ भी हिंदी के प्रचार का मुख्य कारण धार्मिक, सांस्कृतिक जुड़ाव ही अधिक है। उन्होंने बताया कि मॉरीशस में जो सुविधा–सम्मान यूरोपीय भाषा के अखबारों का है, वैसा हिंदी के समाचारपत्रों का नहीं है। बात लगभग वही दिखती है, जैसा कि भारत में है। वहाँ बड़ी आबादी उन गिरमिटिया मजदूरों के वंशजों की है, जो उत्तरप्रदेश, बिहार के भोजपुरी बोली क्षेत्र से गए थे, लेकिन वहाँ की संपर्क भाषा अब भोजपुरी नहीं है। अगर प्रचलन की बात करें, तो वहाँ क्रीयोल भाषा का प्रयोग होता है। क्रियोल भाषा का अर्थ है–खिचड़ी भाषा यानी जो दो या दो से अधिक भाषाओं के मिश्रण से पैदा हुई हो, मॉरीशस में बोली जाने वाली क्रीयोल में अधिकतर फ्रांसिसी और भोजपुरी के शब्द हैं। देखा गया है कि बहुत–से शब्दों के उच्चारण व अर्थ मूल भाषाओं से बदल जाते हैं। मॉरीशस के साहित्यकार राज हिरामन कहते हैं कि हम मॉरिशसवासियों के व्यवहार की भाषा हिंदी या भोजपुरी नहीं, बल्कि क्रियोल है। ऐसी ही स्थितियाँ कमोबेश अन्य ऐसे देशों में हैं। इसी प्रकार रामदेव धुरंधर और डॉ. इंद्रदेव भोला भी इस बात को स्वीकार करते हैं।

व्यापार व्यवसाय या नौकरी के चलते पिछले पचास सौ साल में जो लोग भारत से जाकर विदेशों में बसे, उनमें सर्वाधिक संख्या यूरोप, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और खाड़ी के देशों की रही। इन देशों में हिंदी की वास्तविक स्थितियों को भी वहीं के लोगों की जुबानी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। करीब कई वर्ष पूर्व विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर मुंबई के के.सी. कॉलेज में एक 'वैश्विक हिंदी संगोष्ठी' आयोजित की गई। संगोष्ठी में विद्वान वक्ता, ब्रिटेन से आए कथाकार तजेंद्र शर्मा ने स्पष्ट रूप से कहा कि यूरोप में आँकड़ों के सहारे हिंदी की जो तस्वीर बनाई जाती है. वैसा कुछ है नहीं। हिंदी मुख्यतः मंदिरों या सामाजिक धार्मिक संगठनों के माध्यम से अपने धर्म और संस्कृति के जुड़ाव के लिए
पढ़ाई जाती है और वहाँ भी कोई उत्साहपूर्ण वातावरण नहीं है। ब्रिटेन से ही पधारी हिंदी साहित्यकार श्रीमती शैल अग्रवाल जो अंग्रेजी में भी लिखती हैं, उन्होंने भी इसपर सहमती प्रकट की। मुंबई में प्राचार्य रह चुकी और ऑस्ट्रेलिया में रहीं श्रीमती शील निगम ने बताया कि 2013 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की घटती माँग के चलते यह विचार–विमर्श चल रहा था कि ऑस्ट्रेलिया में हिंदी
क्यों पढ़ाई जाए?इस संबंध में ऑस्ट्रेलिया सरकार के विदेश एवं व्यापार विभाग ने विषय पर परामर्श आमंत्रित किए, तब उनके पुत्र विनय निगम ने जो वहाँ वित्तीय सेवाओं, उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा व प्रशिक्षण के कार्यों से जुड़े हैं, अपने मित्रों सहित उन्होंने भारत–ऑस्ट्रेलिया संबंधों में हिंदी के महत्त्व को आधार बनाकर एक लेख ऑस्ट्रेलिया सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया। अंततः सरकार ने उनके व उनके साथियों के दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण के लिए अधिक धनराशि
उपलब्ध करवाने पर गंभीरता से विचार किया और किसी तरह हिंदी जाते–जाते बची।

कनेडा से 'प्रयास' नामक साहित्यिक हिंदी ई–पत्रिका निकालनेवाले साहित्यकार शरण घई जब भारत आते हैं, तो उनसे मुलाकात होती है। वे बताते हैं कि सिक्खों की बहुलता और प्रभाव के चलते कनेडा में पंजाबी को तो शासकीय मान्यता है, पर हिंदी की कोई खास पूछ नहीं है। इंग्लैंड से मुंबई पधारी सुप्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकार श्रीमती कादंबरी मेहरा ने कई महीने पहले जब भारत आने की सूचना दी तो उनसे भी चर्चा हुई तो उन्होंने कहा– ''इंग्लैंड और दूसरे यूरोपीय देशों में वहाँ हिंदी का इस्तेमाल वे लोग तो करते हैं, जो भारत में जन्मे और बढ़े–पढ़े हैं; लेकिन उनकी अगली पीढ़ियाँ अब हिंदी नहीं बोलतीं। गोंडा (उत्तर प्रदेश) से ओमान के भारतीय समुदाय के स्कूल के हिंदी शिक्षक अशोक कुमार तिवारी ने जनवरी या फरवरी में एक संदेश भेजकर बताया कि किस प्रकार वहाँ हिंदी के साथ सौतेला व्यवहार हो रहा है, उसे समुचित महत्त्व नहीं मिल रहा। प्रो. शिवकुमार सिंह जो पुर्तगाल लिस्वन विश्वविद्यालय में कला संकाय में हिंदी पढ़ाते हैं, वे बताते हैं–1961 तक गोवा, दमन, दीव और दादरा नगर हवेली क्षेत्र पुर्तगाल के अधीन था और उनका भारत के साथ पांच सौ साल का साझा इतिहास है, इसके चलते भारत से जुड़ी यादें आज भी पुर्तगालियों के मन में बसी हैं। इसलिए बहुत से भारतीय
मूल के पुर्तगाली अपने बच्चों को गुजराती, कोंकणी, हिंदी सिखाने की कोशिश करते हैं, कुछ के रिश्तेदार भारत में हैं और साल दो साल में उनका भारत जाना होता है। उनके अनुसार–पढ़ाने के अतिरिक्त दूसरी एक चुनौती विद्यार्थियों की पर्याप्त संख्या बनाए रखना भी है, ताकि शिक्षण कार्य चलता रह सके।

मुंबई में 'वैश्विक संगोष्ठी' के पूर्व चाय–पान के समय, जब तमाम देशी–विदेशी विद्वान बैठे थे, कथाकार तजेंद्र शर्मा ने एक सवाल दागा–''गुप्ताजी! आप भारत में हिंदी की बात करें ठीक है, पर इंग्लैंड में रहकर मुझे या मेरे बच्चों को हिंदी क्यों बोलनी या पढ़नी चाहिए?'' हालाँकि इस विषय पर कुछ तल्ख सी चर्चा हुई, जिसमें वे अकेले पड़ते दिखे, लेकिन वह प्रश्न अभी भी यक्ष प्रश्न की तरह विद्यमान है। ऑस्ट्रेलिया के एक विश्वविद्यालय में इजीनियरिंग मैनेजमेंट के विभागाध्यक्ष सुभाष शर्मा जो वहाँ हिंदी की काव्य गोष्ठियों का आयोजन करने के साथ–साथ हिंदी भाषी समुदाय में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं, वे भी हिंदी भाषियों की हिंदी के प्रति उदासीनता की बात करते हैं।

आज भारत विश्व का एक बहुत बड़ा बाजार है। यहाँ के लोगों को अपना ग्राहक बनाने के लिए और अपना माल या सेवाएँ बेचने के लिए बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिंदी का प्रयोग करती हैं। इसलिए आज चीन, जापान सहित अनेक देशों के नागरिक भारत में हिंदी सीखने के लिए आ रहे हैं। मेरा जब जोहांसबर्ग जाना हुआ था, तो जिस अतिथि गृह में हम रुके हुए थे, उसमें बेल्जियम के भी कई लोग रुके हुए थे, जो वहाँ किसी डायमंड कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के लिए आए हुए थे। नाश्ते की मेज पर जब उनसे बातचीत होने लगी। जब उन्हें पता लगा कि हम भारत से आए हैं तो उन्होंने हिंदी के साथ कुछ गुजराती का प्रयोग
शुरू कर दिया। जब हमने उनसे पूछा कि आपको गुजराती या हिंदी कैसे आती है?तो उन्होंने बताया कि उनका संबंध हीरा कारोबार से है, जिसके लिए उनका भारत आना होता है और भारत में हीरे का काम ज्यादातर गुजरात के सूरत में ही होता है। जब उनकी गुजराती व्यापारियों से बातचीत होती है, तो

उनके साथ बात करके वे थोड़ी हिंदी और गुजराती सीख गए हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत से होने वाले व्यापार के कारण भी विश्व के अन्य देशों में हिंदी पहुँच रही है। यदि भारत के लोग भी अन्य देशों की भाषाएँ सीखें और उनसे संवाद करें, तो निश्चित तौर पर उनके माध्यम से भी हिंदी विश्व के अन्य देशों में पहुँचेगी।

विदेशों में भारतवंशियों, प्रवासी और अप्रवासी भारतीयों की विपुल जनसंख्या और उनका अपने देश के प्रति प्रेम और धर्म–संस्कृति से लगाव विश्व में हिंदी के प्रसार की अनंत संभावनाओं का कारण तो है ही, इसके अतिरिक्त भारत आज विश्व का सबसे बड़ा बाजार है, जहाँ हर देश अपनी जगह बनाना चाहता है। इसके कारण यदि सरकार द्वारा हिंदी भाषा के प्रयोग की दृष्टि से कुछ निर्णय लिए जाएँ, तो तस्वीर पूरी तरह बदल सकती है। पूरी दुनिया में देश और विदेश में खपनेवाले सामान पर सभी देशों में उस देश की भाषा में जानकारी दी होती है। विदेशों के लिए उस देश की भाषा का भी प्रयोग होता है, लेकिन भारत में सब अंग्रेजी में है। सरकार द्वारा इस संबंध में आवश्यक कानून बनाए जाने की आवश्यकता है।

ऊपर की गई चर्चा से निकल कर आ रहे संकेतों से यह स्पष्ट है कि विश्व में हिंदी की स्थिति को मजबूत करने के लिए हमें सर्वप्रथम भारत में हिंदी की स्थिति को मजबूत करना होगा। आज भारत में और विशेषकर हिंदी भाषी क्षेत्र में भी हिंदी व्यापार–व्यवसाय तथा शिक्षा–रोजगार आदि में निरंतर अपना स्थान गँवा रही है। उत्तर भारत के छोटे–छोटे गाँवों तक अंग्रेजी माध्यम के स्कूल अपने पाँव पसार चुके हैं। एक विषय के रूप में भी हिंदी की स्थिति धीरे–धीरे दोय्यम दर्जे की हो रही है। एक समय था, जब स्कूल स्तर पर तो कम–से–कम हिंदी ज्ञान–विज्ञान का माध्यम हिंदी होती थी, लेकिन अब तो धीरे–धीरे अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के चलते भारत में भी हिंदी ज्ञान–विज्ञान की भाषा नहीं रह गई है। अंग्रेजी माध्यम से निकलकर आए ज्यादातर बच्चे अब हिंदी बोलना और लिखना तक पसंद नहीं करते हैं। ऐसे
में यह अपेक्षा करना कि विदेशों में भारतवंशी प्रवासी भारतीय या अन्य विदेशी लोग हिंदी का प्रयोग करेंगे, यह बेमानी–सा लगता है। यही कारण है कि विश्व के अनेक विश्वविद्यालय जहाँ कल तक हिंदी विषय उच्च स्तर तक पढ़ाया जाता था, अब उसे धीरे–धीरे समाप्त किया जा रहा है। विदेशों में हिंदी मुख्यतः भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों के बीच साहित्य संगीत, सिनेमा आदि तक सिमट कर रह गई है और अब भारत की तरह ही वहाँ भी नई पीढ़ियाँ धीरे–धीरे उससे दूर होती जा रही हैं, लेकिन नई शिक्षा
नीति के माध्यम से जिस प्रकार सरकार भारतीय भाषाओं के शिक्षण और भारतीय भाषाओं में शिक्षण के लिए प्रयास कर रही है, उससे उम्मीद तो जगती है। निश्चय ही इसका प्रभाव विदेशों में हिंदी के प्रयोग पर भी पड़ेगा।

भले ही हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकारिक भाषा न बनी हो, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा, बहुभाषावाद को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा संगठन के मूल मूल्य के रूप में मान्यता दे दी गई है। बहुभाषावाद के प्रस्ताव में हिंदी भाषा का उल्लेख है। भारत 2018 से संयुक्त राष्ट्र के वैश्विक संचार विभाग (डीजीसी) के साथ साझेदारी कर रहा है। इससे भी वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार का माँग प्रशस्त हुआ है।

जहाँ तक मेरी समझ की बात है, मुझे विदेशों में हिंदी के प्रसार के लिए विदेशों से अधिक देश में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के प्रयास किए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यदि भारत में हिंदी की जड़ें मजबूत होंगी, तो उससे निकलनेवाली मजबूत टहनियाँ और भारत में उनमें लगनेवाले ज्ञान–विज्ञान, गीत–संगीत तथा साहित्य आदि के फल भाषा के साथ विश्वभर में पहुँचेंगे। जिस प्रकार किसी वृक्ष की मजबूती के लिए उसे उचित और पर्याप्त खाद पानी की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार हिंदी की जड़ों को भी रोजगार और उन्नति के अवसरों की खाद की आवश्यकता है। जब भारत में हिंदी रूपी वृक्ष की जड़ों को इसका पोषण मिलने लगेगा, तो निश्चित रूप से हिंदी का यह वटवृक्ष भारतभूमि पर विकसित होते हुए भारत की संस्कृति के साथ–साथ भारत के विकास की सुगंध को भी विश्व भर में फैलाएगा।

कविता

सच का उद्घाटन

डॉ. सुनील त्रिपाठी
भिंड (मप्र.)
मो.–9826236218

कविता वर्तमान का दर्पण, ये दिग्दर्शन करवाएगी
कविता कल भी सुनी गयी थी, कविता कल भी सुनी जाएगी

वाल्मीकि के निष्ठुर मन को, कविता ने नवनीत बनाया
पीड़ित हृदय हुआ तुलसी का, कविता ने घर–घर पहुँचाया
घनानंद की विरह वेदना, छंद सवैया लेकर उभरी
खंजन नयन सूर के पद से, महक उठी कविता की बखरी
अंतर्मन की प्रखर चेतना, हरदम सत्पथ अपनाएगी

श्रमसीकर की गंध समाहित, करके कविता बोल उठेगी
कविता वही अमर होगी, जो पीड़ा का अनुवाद करेगी
नंदनंदन हिमगिर रत्नाकर, झील सरोवर झरने सरिता
दुर्गम पथ समतल पगडंडी, नाना रूपक धरती कविता
कविता की मथनी मन को मथ, भावों का मक्खन लाएगी

कविता को पाने के हित में, अपने को खोना पड़ता है
मीरा बनकर अंदर–अंदर, सुबक–सुबक रोना पड़ता है
और सुभद्रा बनकर, लक्ष्मीबाई मय को जाना पड़ता
दिनकर बनकर कुरुक्षेत्र में कर्मयोग दिखलाना पड़ता
कविता दिव्य देशना करके, नभ में यशध्वज फहराएगी

जब होगा चहुँदिश सन्नाटा होगा, उस पल भी कविता बोलेगी
कविता पहले अपने स्वर को, हृदय तराजू में तौलेगी
संघर्षों का दीपक लेकर, कविता हरदम तिमिर हटाये
स्थिर होगा लक्ष्य साधकर, कविता चलना हमें सिखाये
सच का उद्घाटन करने में, कविता कभी न भय खाएगी।।

आलेख

मानवीय संवेदनाओं से आपूरित तुम्हारा प्रतिरूप

सुश्री अमृता सिंह
स. प्राध्यापिका, दर्शनशास्त्र विभाग
पूर्णिया कॉलेज, पूर्णिया
मो. 8887564089

काफी प्रतीक्षा के बाद विद्वान मृदुभाषी और सौम्य व्यक्तित्व की धनी लेखिका डॉ निरुपमा राय का कहानी संग्रह–'प्रतिरूप तुम्हारा' पढ़ने का अवसर मिला। उनके द्वारा रचित यह पुस्तक मुझे उपहार स्वरूप प्राप्त हुई और यह भेंट मेरे जीवन की अनमोल भेंट है, यह स्वीकार करने में मुझे कोई संदेह नहीं है। इससे पूर्व भी इनके कुछ कहानी संग्रह जैसे 'चाक पर मिट्टी' और 'झरना बह निकला' को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला था और इसी कड़ी में इस बहुप्रतीक्षित पुस्तक का मुझे इंतजार था। यह कहानी संग्रह नारी के एक ऐसे रूप को लेकर रचा गया है, जिसकी मिसाल संपूर्ण विश्व में मिलना असंभव है। मातृत्व स्त्री के सबसे जटिल रूपों में से एक है और इसकी जटिलता ही संभवतः इसकी सुंदरता है। स्त्री के इसी रूप के इर्द–गिर्द यह कहानी संग्रह घूमता है। स्वत्व, अपनत्व और ममत्व की तलाश करता यह कथा संग्रह वास्तव में पठनीय है। कहानी संग्रह में कुल 17 कहानियाँ हैं और सभी अपने आपमें अनूठी और विशेष हैं।

कहानी संग्रह की प्रथम कहानी 'प्रतिरूप तुम्हारा' जिस पर की पुस्तक का नामकरण भी किया गया है–माँ और बेटी के भावपूर्ण रिश्ते को परिभाषित करती है। सुन्दर संवेदनशील शब्दों से कथा प्रारम्भ करते हुए कथा लेखिका बताती है कि बेटी वास्तव में माँ का ही प्रतिरूप अर्थात प्रतिबिंब होती है और वक्त पड़ने पर वह अपने ममता के सागर से स्वयं अपनी माँ को भी सराबोर कर सकती है। कहानी की मुख्य पात्र स्लिप डिस्क में पूर्णतः असमर्थ हो जाती है, तब अपनी बेटी प्रिया के त्याग, समर्पण और प्रेम से परिपूर्ण सेवा भाव को देखकर अपनी माँ की छवि को अपनी पुत्री में तलाशती हैं। माँ और बेटी, बेटी और माँ वास्तव में एक–दूसरे का पर्याय ही हैं, यह कहानी हमें यही बतलाती है।

कहानी संग्रह की दूसरी कहानी 'उत्तर दो माँ।' विकलांगता के दर्द को उकेरती समाज के दोहरे रवैये को चित्रित करती बेहद करुण कहानी है। कहानी की बालिका पात्र अंजू बचपन से ही आधे शरीर के पक्षाघात से पीड़ित है, जिसे उसकी माँ ने अपने पति द्वारा जान से मारे जाने के भय से उसके ननिहाल को सौंप दिया है। अपने बचपन को एक बोझ की भाँति जीती एक मासूम बच्ची के मन में अपने माता–पिता के द्वारा किया गया अन्यायपूर्ण व्यवहार एक प्रश्न बनकर चुभता है। उसके कोमल हृदय को कचोटता है, जिसकी परिणति इस कहानी के शीर्षक 'उत्तर दो माँ' के रूप में होती है। इसके साथ ही यह कहानी एक स्त्री की उसे समय अवस्था को भी दर्शाती है, जिसमें उसे अपने वैवाहिक जीवन को बचाने हेतु अपनी ममता की बलि देनी पड़ती है। क्या कहानी अपने पाठकों के लिए एक अनुत्तरित सवाल भी छोड़ जाती है कि यदि बेटी की जगह कोई विकलांग बेटा होता, तो क्या उसे भी बोझ समझ त्याग दिया जाता या कुल का चिराग मानकर विधाता की इच्छा समझ स्वीकार किया जाता?तीसरी कहानी– 'प्रतीक्षा का पाथेय' है एक बुआ और भतीजी के रिश्ते की ओर ध्यान आकृष्ट करती कहानी, जो समाज में प्रायः उपेक्षित ही है। यह कहानी कहानी वृद्धावस्था में अपने बेटों द्वारा अपेक्षित और भतीजी द्वारा पालित एक महिला की कहानी है। बुढ़ापे में जिस संतान को माता–पिता अपने जीवन का सहारा मानकर जीवन गुजारने की कल्पना करते हैं, वही सहारा उन्हें बेसहारा कर दे, तो वह किस तरह अपंग हो जाते हैं, यह कहानी इस व्यथा को चित्रित करती है। कहानी के अंत में अम्मा की मृत्यु के समय उनकी संपत्ति पर हक जताने आए बेटों को संपत्ति मुन्नी भतीजी के नाम कर दिए जाने का संदेश देकर यह कहानी उन युवक–युवतियों के मुँह पर तमाचा मारती है, जो जीवन भर तो माता–पिता के प्रेम और समर्पण पर पलते हैं, पर जब उनकी बारी आती है तो वो अपने कर्तव्य से मुकर जाते हैं।

अगली कहानी 'पहचान' आधुनिक समाज में तेजी से बढ़ रहे वृद्ध आश्रम की संख्या की ओर इंगित करती एक वृद्ध माँ की कहानी है, जिसका बुढ़ापे का एकमात्र सहारा वृद्धाश्रम ही है और जो अपने ही बच्चों द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित है। साथ ही यह कहानी मनुष्य के दोहरे चरित्र का भी कुशलतापूर्वक चित्रण करती है, जिसमें व्यक्ति अपनी बाह्य प्रतिष्ठा एवं मान–सम्मान का झूठा आडंबर रखता है। जबकि व्यक्तिगत जीवन में वहाँ से कोसों दूर है। कहानी की पात्र वृद्ध मां प्रतिमा देवी का पुत्र प्रतिष्ठित ऑर्थोपेडिक सर्जन है, जो वैसे तो वृद्ध आश्रम में मुफ्त चिकित्सा सेवाएँ प्रदान करता है, परंतु उसने स्वयं अपनी वृद्ध माँ को वृद्धाश्रम के भरोसे छोड़ रखा है। समाज सेवा के नाम पर प्रतिष्ठा एवं मान–सम्मान प्राप्त ऐसे ही धूर्त और निंदनीय लोगों की असलियत की पोल यह कहानी खोलती है।

'माँ की बिटिया नयनतारा' कहानी एक मनुष्य और पक्षी के खूबसूरत एवं भावपूर्ण संबंधों पर आधारित है, जो प्रारंभ में पाठकों को भ्रम में डालती है कि नयनतारा कौन है?कहानी के अंत में उस भ्रम का निदान होता है कि नयनतारा वास्तव में एक मनुष्य न होकर पहाड़ी मैना है। संबंध निभाने की कला में मनुष्य को भी पीछे छोड़ देती है। मनुष्य द्वारा पाली चिड़िया माँ के इतने करीब हो जाती है कि माँ की मृत्यु के साथ ही अपने प्राणों का त्याग कर देती है। मानव और मानवता प्राणियों के अनुपम संबंध को दर्शाती यह कहानी मानवता के लिए एक मिसाल है।

पाँचवी कथा 'नामक' कहानी भारतीय समाज में अभिशाप की तरह प्रचलित कन्या–वध पर आधारित है। कहानी का मुख्य पात्र अजबलाल एवं उसकी पत्नी एक निःसंतान दंपति हैं, जिन्हें पानी में बहायी गई एक बच्ची मिलती है, जिसे अपनी बेटी के रूप में पालने लगते हैं। किंतु बच्ची का हत्यारा पिता उनसे इस एवज में रुपयों की वसूली करना चाहता है और रुपए न देने पर उन्हें जेल भेजने की धमकी देता है। पुत्र प्राप्ति का आकांक्षी यह निर्दयी बाप जब 5वीं बार भी पुत्र का पिता बनने में असफल होता है, तो उस बच्ची को मारने हेतु पानी में फेंक देता है, जिसे अजबलाल और उसकी पत्नी बचा लेते हैं। लेकिन बच्ची जो अभिशाप के रूप में जन्मी हो, जिसे उसका जन्मदाता पिता ही स्वीकारने से इंकार कर दे, वह भी कैसे रह पाती! कथा के अंत में बच्ची की मृत्यु हो जाती है। एक बच्ची के जीवन के ऐसे दुखद अंत का सिलसिला न जाने भारतीय समाज से कब समाप्त होगा?

कहानी 'माँ तुम कैसी हो' एक ऐसी स्त्री भावना की कहानी है, जो बचपन से ही माँ के प्रेम से वंचित है। यह कहानी समाज में प्रचलित जाति प्रथा को केंद्र में रखते हुए अंतरजातीय विवाह के प्रति समाज की प्रकृति को चित्रित करती है। उच्च कुल की ब्राह्मण वंदना द्वारा अनाथालय में पले–बढ़े भास्कर के साथ प्रेम विवाह उसके घरवालों को इतना नागवार गुजरता है कि वह जीते जी बेटी का श्राद्ध कर्म कर देते हैं। इसके बाद वंदना की अपनी बेटी को जन्म देने के अगले ही दिन मृत्यु हो जाती है। माँ का मुख देखने से वंचित भावना जब स्वयं एक पुत्री की माँ बनती है, तो अपनी बिछड़ी माँ की तलाश करती है और अंत में उसकी इस तलाश को पूरा करते हैं उसके पति और बेटी।

कहानी 'अर्धांगिनी' एक स्त्री के मातृत्व और पत्नी रूप के बीच के

अंतर्द्वन्द्वको दर्शाती है। वृद्धावस्था में पुत्र के प्रेम और साथ की बाट जोह रहे वृद्ध दंपत्ति जीवन के अंतिम कठिन क्षणों में उसका इंतजार करते हुए किस मानसिक वेदना से गुजरते हैं, यह कहानी उस दर्द को बयाँ करती है। कहानी के पात्र श्री राम प्रकाश सिंह अपनी बीमार अवस्था में अपने पुत्र का इंतजार करते हुए एक–एक पल जी रहे हैं, जबकि उनकी पत्नी यह जानते हुए भी कि उनका पुत्र अपने पिता से मिलने नहीं आएगा, अपने पति को समझाने का कार्य करती रहती है। वस्तुत: यह कहानी एक माँ के द्वारा अपने बेटे को लिखा गया मार्मिक पत्र है, जिसमें एक माँ की वेदना कम और एक पत्नी का फर्ज ज्यादा दिखाई देता है। पत्र के अंत में माँ के स्थान पर लिखा गया.... सुभद्रा देवी.. पत्नी श्री राम प्रकाश सिंह, हृदय पर हथौड़े की चोट करता है और पुत्रत्व को धिक्कारता है। यह एक पत्नी के आत्मसम्मान और कर्तव्य की कहानी है।

कहानी 'नेहबंध' भारतीय समाज में प्राय: प्रताड़ना और उपहास पर्याय सास और बहु के रिश्ते पर आधारित है, जो सास–बहु कम और माँ–बेटी का रिश्ता अधिक प्रतीत होता है। कहानी की पात्र मंगला देवी के सर पर अशुभ होने का ठप्पा बचपन से ही लगा हुआ है। वर्षों से अपने ससुराल वालों और अपने पुत्र से उपेक्षित मंगला देवी की पुत्रवधू जब आती है, तो मानो उनके मातृत्व का पुनर्जन्म होता है। जिस स्त्री की कोख से जनमा पुत्र ही उसे माँ की जगह 'भौजी' का संबोधन देता हो, वह मातृत्व पर लांछन नहीं तो और क्या है?पुत्रवधू गायत्री वर्षों से अपनी सास पर लगे कलंक को मिटाने का कार्य करती है, जो इस कहानी को सुंदर बनाती है।

कहानी 'यादें' एक पुत्री और उसी माँ की भावपूर्ण स्नेहपूर्ण संबंधों पर आधारित संवेदनशील कहानी है। माँ और बेटी के अनमोल रिश्ते की गहराई को समझना अत्यंत कठिन है। वास्तव में ममता का स्वर्णिम एहसास संसार की किसी भौतिक और निर्जीव वस्तु में कहाँ हो सकता है?यह कहानी इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करती है। कहानी संग्रह की कहानी 'तालेवाली डायरी' एक बेटी की अपनी माँ के प्रति गहरे प्रेम और संवेदना को अभिव्यक्त करती है। यह संग्रह की अत्यंत ही संवेदनशील कहानी
है। कहानी की मुख्य पात्र सोनू नाम की 12 वर्षीय बालिका है, जो अल्प आयु में ही डायबिटीज जैसी आजीवन चलनेवाली बीमारी की गंभीर शिकार है। एक तरफ तो वह अपने रोग से ग्रस्त होने की पीड़ा का दंश झेल रही है, तो वहीं दूसरी तरफ अपनी अपने दुख से दुखी अपनी माँ की भी चिंता करती है। कहानी एक बच्ची की जीवन के प्रति उत्कट अभिलाषा एवं जिजीविषा की कहानी है, जो अंत में अपनी माँ को भी अपनी कमजोरी छोड़ मजबूत मन से लड़ने और परिस्थितियों का सामना करने की हिम्मत देती है।

'प्रतिदान' कहानी एक स्त्री के जीवन में घटित होने वाले अवांछित घटनाओं का एक क्रम है, जिसका आदि तो है, परन्तु अंत केवल मृत्यु है। 16 वर्ष की अवस्था से ही अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर गुंजन जीवन की आखिरी बेला में अपने जन्म को सार्थक करते हुए अपने शरीर के सभी अंगों के साथ सम्पूर्ण शरीर का दान कर देती है। मानव जीवन की इससे बड़ी सार्थकता और क्या हो सकती है। कहानी इस तथ्य को बखूबी बयाँ करती है। कहानी संग्रह की अन्य कहानियों में 'उस मुंडेर पर अब धूप नहीं आती', 'तुम्हारी कसम माँ', 'वो एक अनोखा पल', 'गठरी', 'सरस्वती सदन' आदि कहानियाँ हैं।

'उस मुंडेर पर अब धूप नहीं आती' कहानी मानवीय रिश्तों में पड़ी गाँठ को खोलने की दिशा में कदम बढ़ाती हुई भाई और बहन की सुंदर कहानी है। 'तुम्हारी कसम माँ' बालपन के भोलेपन को चित्रित करती है। 'दो–एक अनोखा पल' कहानी मातृत्व की सूक्ष्म अभिव्यक्ति को प्रकट करती है।

कहानी 'गठरी' मानव मन के विचित्र मनोविज्ञान को दर्शाती अन्नपूर्णा नामक स्त्री की कहानी है, जो अपने जीवन के पूर्वार्ध में दबी इच्छाओं और संचित अभिलाषाओं की गठरी लादे हुए अपने जीवन के उत्तरार्ध में प्रवेश करती है और इच्छाओं की इस गठरी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं। इच्छाओं की इस गठरी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। किस प्रकार वह स्वयं को इस गठरी के भार से मुक्त करती है–कहानी यही दर्शाती है।

कहानी संग्रह की अंतिम कहानी 'सरस्वती सदन' परंपरा और आधुनिकता, पूर्व और पश्चिम के द्वंद्वको रेखांकित करती है, जिसमें जीत अंतत: अपनी मातृभूमि की सांस्कृतिक विरासत की होती है। कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ पठनीय और सारगर्भित हैं। कहानियों की भाषा सहज और सरल है। जीवन के यथार्थ के करीब रची–बसी कहानियों का संसार है–'प्रतिरुप तुम्हारा'। मैं शुभकामनाएँ देती हूँ कि डॉ. निरुपमा राय की लेखनी निरन्तर चलती रहे और वे सुंदर साहित्य का सृजन करती रहें। मंगल कामनाएँ।

समीक्ष्य पुस्तक : प्रतिरूप तुम्हारा, लेखिका–डॉ. निरुपमा राय
प्रकाशक–नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

कविता

आखिर क्यों?

अशोक सिंह
दुमका (झारखंड)
मो.–9110072128

आखिर क्यों
मन से मन का विघटन
होता है
आदमी आदमी का दुश्मन होता है
एक ही छत के नीचे
रहने वाले
आपस में दूरियों के
पुल बना लेते हैं
आखिर क्यों?
पड़ोसी, पड़ोसी को फूटी आँख नहीं भाता
अपना बनकर है अपनों का
गला काटता

आखिर क्यों
मनुष्य ईश्वर अल्लाह के नाम पर लड़ता है
खुद के साथ ईश्वर को भी
ठगता है
आखिर यह जीवन पानी का बुलबुला है
समय के साथ जो निरंतर चल रहा है
यह जानकर भी आज लोग
भोगवादी लिप्त हैं
अन्याय और भ्रष्टाचार के
साये में गिरफ्त है
आखिर क्यों, आखिर क्यों?

लघुशोध

गणेश शंकर विद्यार्थी का अद्‌भुत प्रताप

कृष्ण कुमार यादव
पोस्टमास्टर जेनरल
वाराणसी, (उ.प्र.)
मो.–9413666599

साहित्य की सदैव से समाज में प्रमुख भूमिका रही है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान पत्र–पत्रिकाओं में विद्यमान क्रान्ति की ज्वाला क्रान्तिकारियों से कम प्रखर नहीं थी। इनमें प्रकाशित रचनाएँ जहाँ स्वतन्त्रता आन्दोलन को एक मजबूत आधार प्रदान करती थीं, वहीं लोगों में बखूबी जन जागरण का कार्य भी करती थीं। गणेश शंकर विद्यार्थी साहित्य और पत्रकारिता के ऐसे ही शीर्ष स्तम्भ थे, जिनके अखबार 'प्रताप' ने स्वाधीनता आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभायी। प्रताप के जरिये न जाने कितने क्रान्तिकारी
स्वाधीनता आन्दोलन से रू–ब–रू हुए, वहीं समय–समय पर यह अखबार क्रान्तिकारियों हेतु सुरक्षा की ढाल भी बना।

गणेश शंकर विद्यार्थी का जन्म 26 अक्टूबर, 1890 को अपने ननिहाल अतरसुइया, इलाहाबाद में हुआ था। उनके नाना सूरज प्रसाद श्रीवास्तव सहायक जेलर थे, अतः अनुशासन उन्हें विरासत में मिला। गणेश शंकर के नामकरण के पीछे भी एक रोचक वाकया है–उनकी नानी ने सपने में अपनी पुत्री गोमती देवी के हाथ गणेश जी की प्रतिमा दी थी, तभी से उन्होंने यह माना था कि यदि गोमती देवी का कोई पुत्र होगा, तो उसका नामकरण गणेश शंकर किया जायेगा। मूलतः फतेहपुर जनपद के हथगाँव क्षेत्र के निवासी गणेश शंकर के पिता मुंशी जयनारायण श्रीवास्तव ग्वालियर राज्य में मुंगावली नामक स्थान पर अध्यापक थे। गणेश शंकर आरम्भ से ही किताबें पढ़ने के काफी शौकीन थे, इसी कारण मित्रगण उन्हें 'विद्यार्थी' कहते थे। बाद में उन्होंने यह उपनाम अपने नाम के साथ लिखना आरम्भ कर दिया। विद्यार्थी जी की प्रारम्भिक शिक्षा पिताजी के स्कूल मुंगावली, जहाँ वे एंग्लो–वर्नाकुलर मिडिल स्कूल में अध्यापक थे, में हुई। विद्यार्थी जी उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे। 1904 में उन्होंने
भलेसा से अंग्रेजी मिडिल की परीक्षा पास किया, जिसमें पहली बार हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में मिली थी। तत्पश्चात् पिताजी ने विद्यार्थी जी को पढ़ाई के साथ–साथ नौकरी करने के लिए बड़े भाई शिवव्रत नारायण के पास कानपुर भेज दिया। कानपुर में आकर विद्यार्थी जी ने क्राइस्ट चर्च कॉलेज की प्रवेश परीक्षा दी, पर भाई का तबादला मुंगावली हो जाने से आगे की पढ़ाई फिर वहीं हुई। वर्ष 1907 में विद्यार्थी जी आगे की पढ़ाई के लिए कायस्थ पाठशाला गये। इलाहाबाद प्रवास के दौरान विद्यार्थी जी की मुलाकात 'कर्मयोगी' साप्ताहिक के सम्पादक सुन्दर लाल से हुई एवं इसी दौरान वे उर्दू पत्र स्वराज्य के संपर्क में भी आये। गौरतलब है कि अपनी क्रान्तिधर्मिता के चलते 'स्वराज्य' पत्र के आठ सम्पादकों को सजा दी गई थी, जिनमें से तीन को कालापानी की सजा मुकर्रर हुई थी। सुन्दरलाल उस दौर के प्रतिष्ठित संपादकों में से थे। लोकमान्य तिलक को इलाहाबाद बुलाने के जुर्म में उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया था एवं इसी कारण उनकी पढ़ाई भी भंग हो गई थी। सुन्दरलाल के संपर्क में आकर विद्यार्थी जी ने 'स्वराज्य' एवं 'कर्मयोगी' के लिए लिखना आरम्भ किया। यहीं से पत्रकारिता एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति उनकी आस्था भी बढ़ती गई।

इलाहाबाद से गणेश शंकर विद्यार्थी कानपुर आये एवं इसे अपनी कर्मस्थली बनाया। कानपुर में कलकता से अरविंद घोष द्वारा सम्पादित 'वन्देमातरम्' ने विद्यार्थी जी को आकृष्ट किया एवं इसी दौरान उनकी मुलाकात पं. पृथ्वीनाथ एवं मिडिल स्कूल के अध्यापक नारायण प्रसाद अरोड़ा से हुई। अरोड़ा जी की
सिफारिश पर विद्यार्थी जी को उसी स्कूल में अध्यापक की नौकरी मिल गई, पर पत्रकारिता की ओर मन से प्रवृत्त विद्यार्थी जी का मन यहाँ भी नहीं लगा और नौकरी अन्ततः छोड़ दी। उस समय महावीर प्रसाद द्विवेदी कानपुर में ही रहकर 'सरस्वती' का सम्पादन कर रहे थे। विद्यार्थी जी इस पत्र से भी सहयोगी रूप में जुड़े रहे। एक तरफ पराधीनता का दौर उस पर से अंग्रेजी हुकूमत के अत्याचार ने विद्यार्थी जी को झकझोर कर रख दिया। उन्होंने पत्रकारिता को राजनैतिक चेतना को जोड़कर कार्य करना आरम्भ
किया। इसी दौरान वे इलाहाबाद लौटकर वहाँ से प्रकाशित साप्ताहिक 'अभ्युदय' के सहायक संपादक भी रहे। पर विद्यार्थी जी का मनोमस्तिष्क तो कानपुर में बस चुका था, अतः वे पुनः कानपुर लौट आये।

कानपुर में विद्यार्थी जी ने 1913 से साप्ताहिक 'प्रताप' के माध्यम से न केवल क्रान्ति का नया प्राण फूँका, बल्कि इसे एक ऐसा समाचार पत्र बना दिया, जो सारी हिन्दी पत्रकारिता की आस्था और शक्ति का प्रतीक बन गया। प्रताप प्रेस में कम्पोजिंग के अक्षरों के खाने में नीचे बारुद रखा जाता था एवं उसके ऊपर टाइप के अक्षर ब्लाक बनाने के स्थान पर नाना प्रकार के बम बनाने का सामान भी रहता था। पर तलाशी में कभी भी पुलिस को ये चीजें हाथ नहीं लगीं। विद्यार्थी जी को 1921–1931 तक पाँच बार जेल जाना पड़ा और यह प्रायः 'प्रताप' में प्रकाशित किसी समाचार के कारण ही होता था। विद्यार्थी जी ने सदैव निर्भीक एवं निष्पक्ष पत्रकारिता की। उनके पास पैसा और समुचित संसाधन नहीं थे, पर एक ऐसी असीम ऊर्जा थी, जिसका संचरण स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त होता था। 'प्रताप' प्रेस के निकट तहखाने में ही एक पुस्तकालय भी बनाया गया, जिसमें सभी जब्तशुदा क्रान्तिकारी साहित्य एवं पत्र–पत्रिकाएँ उपलब्ध थीं। यह 'प्रताप' ही था, जिसने दक्षिण अफ्रीका से विजयी होकर लौटे तथा भारत के लिये उस समय तक अनजान महात्मा गाँधी की महत्ता को समझा और चम्पारण सत्याग्रह की नियमित रिपोर्टिंग कर राष्ट्र को गाँधी जी जैसे व्यक्तित्व से परिचित कराया। चौरीचौरा तथा काकोरी काण्ड के दौरान भी विद्यार्थी जी 'प्रताप' के माध्यम से प्रतिनिधियों के बारे में नियमित लिखते रहे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित सुप्रसिद्ध देशभक्ति कविता 'पुष्प की अभिलाषा' प्रताप अखबार में ही मई 1922 में प्रकाशित हुई। बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, सनेहीजी, प्रताप नारायण
मिश्र इत्यादि ने 'प्रताप' के माध्यम से अपनी देशभक्ति को मुखर आवाज दी।

विद्यार्थी जी एक पत्रकार के साथ–साथ क्रान्तिधर्मी भी थे। वे पहले ऐसे राष्ट्रीय नेता थे, जिन्होंने काकोरी षडयंत्र केस के अभियुक्तों के मुकदमे की पैरवी करवायी और जेल में क्रान्तिकारियों का अनशन तुड़वाया। कानपुर को क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनाने में विद्यार्थी जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, विजय कुमार सिन्हा, राजकुमार सिन्हा जैसे तमाम क्रान्तिकारी विद्यार्थी जी से प्रेरणा पाते रहे। वस्तुतः 'प्रताप' प्रेस की बनावट ही कुछ ऐसी थी कि जिसमें छिपकर रहा जा सकता था तथा फिर सघन बस्ती में तलाशी होने पर एक मकान से दूसरे मकान की छत पर आसानी से जाया जा
सकता था। बनारस षडयंत्र से भागे सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य 'प्रताप' अखबार में उपसम्पादक थे। बाद में भट्टाचार्य 'प्रताप' अखबार से ही जुड़े पं. रामदुलारे त्रिपाठी को काकोरी काण्ड में सजा मिली। भगत सिंह ने तो 'प्रताप' अखबार में बलवन्त सिंह के छद्म नाम से लगभग ढाई वर्ष तक कार्य किया। सर्वप्रथम दरियागंज, दिल्ली में हुए दंगे का समाचार एकत्र करने के लिए भगत सिंह ने

दिल्ली की यात्रा की और लौटकर प्रताप के लिए सचिन दा के सहयोग से दो कॉलम का समाचार तैयार किया। चन्द्रशेखर आजाद से भगत सिंह की मुलाकात विद्यार्थी जी ने ही कानपुर में करायी थी, फिर तो शिव वर्मा सहित तमाम क्रान्तिकारी जुड़ते गये। यह विद्यार्थी जी ही थे कि जेल में भेंट करके क्रान्तिकारी राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा छिपाकर लाये तथा उसे 'प्रताप' प्रेस के माध्यम से प्रकाशित करवाया। जरूरत पड़ने पर विद्यार्थी जी ने रामप्रसाद बिस्मिल की माँ की मदद की और रोशन सिंह की कन्या का कन्यादान भी किया। यही नहीं, अशफाकउल्ला खान की कब्र भी विद्यार्थी जी ने ही बनवाई।

विद्यार्थी जी का प्रताप तमाम महापुरुषों को भी आकृष्ट करता था। 1916 में लखनऊ कांग्रेस के बाद महात्मा गाँधी और लोकमान्य तिलक इक्के पर बैठकर 'प्रताप' प्रेस आये एवं वहाँ दो दिन रहे। 1925 के कानपुर कांग्रेस अधिवेशन के दौरान विद्यार्थी जी स्वागत मंत्री रहे और जवाहरलाल नेहरू के साथ–साथ घोड़े पर चढ़कर अधिवेशन स्थल का भ्रमण करते थे। यह विद्यार्थी जी ही थे, जिन्होंने श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' को प्रताप प्रेस में रखा एवं उनके गान राष्ट्र पताका नमो–नमो को 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' में तब्दील कर दिया। विद्यार्थी जी सिद्धांतप्रिय व्यक्ति थे। एक बार जब ग्वालियर नरेश ने उन्हें सम्मानित किया और कहा कि मुझे खुशी है कि आपके पिताजी मेरे अंतर्गत मुंगावली में कार्यरत रहे हैं, परन्तु आप मेरे बारे में अपने अखबार में लगातार विरोधी खबरें छाप रहे हैं, तो विद्यार्थी जी ने निडरता से कहा कि मैं आपका और पिताजी के आपसे सम्बन्धों का सम्मान करता हूँ, परन्तु इसके चलते अखबार के साथ अन्याय नहीं कर सकता। हाँ, यदि आप इन खबरों का प्रतिवाद लिखकर भेजेंगे, तो अवश्य प्रकाशित करूँगा।

कालान्तर में विद्यार्थी जी गाँधीवादी विचारधारा से काफी प्रभावित हुए एवं यह उनकी लोकप्रियता का भी सबब बना। वे क्रान्तिकारियों एवं गाँधीवादी विचारधारा के अनुयायियों के लिए समान रूप से प्रिय थे। इस बीच अंग्रेजी हुकूमत ने 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह को फांसी पर चढ़ा दिया, तो भारतीय जनमानस आगबबूला हो उठा। अंग्रेजी निर्दयता के विरुद्ध जनमानस सड़कों पर उतर आया। निडर एवं साहसी व्यक्तित्व के धनी तथा साम्प्रदायिकता विरोधी विद्यार्थी जी इस दौरान भड़के हिन्दू–मुस्लिम दंगों को शान्त कराने के लिए लोगों के बीच उतर पड़े। उधर विद्यार्थी जी के प्रताप से अंग्रेजी हुकूमत भी भयभीत थी। रायबरेली में मुंशीगंज गोली काण्ड के तहत 'प्रताप' पर मानहानि का केस चल रहा था और अंग्रेज बार–बार यह संदेश दे रहे थे कि जब तक कानपुर में प्रताप जीवित है, तब तक प्रदेश में शान्ति स्थापना मुश्किल है। भड़की हिंसा को काबू करने के दौरान 25 मार्च 1931 को विद्यार्थी जी साम्प्रदायिकता की भेंट चढ़ गए। उनका शव अस्पताल की लाशों के मध्य पड़ा मिला। वह इतना फूल गया था कि उसे पहचानना तक मुश्किल था। नम आँखों से 29 मार्च को विद्यार्थी जी का अन्तिम संस्कार कर दिया गया, पर 'प्रताप' के माध्यम से 'विद्यार्थी' जी ने राजनैतिक आन्दोलन, क्रान्तिकारी चेतना, क्रान्तिधर्मी पत्रकारिता एवं साहित्य को जो ऊँचाइयाँ दी, उसने उन्हें अमर कर दिया एवं इसकी आँच में ही अन्ततः स्वाधीनता की लौ प्रज्वलित हुई।

ग़ज़लें

हरिनारायण गुप्त
जयप्रकाशनगर
चंदवारा मुजफ्फरपुर
मो.–9470703385

पत्थर के मंदिर–मस्जिद में कहीं नहीं भगवान मिले
हिन्दू–मुस्लिम–सिक्ख मिले पर कहीं–कहीं इंसान मिले

दुनिया में मैं रहा ढूँढ़ता एक सहारा जीने का
जिनसे थी उम्मीद जगी वो भी खुद ही बेजान मिले

बहुत सुहाना मौसम था जब कश्ती उतरी सागर में
मौसम बदला उठी लहर और बेकाबू तूफान मिले

ढूंढ रहा हूँ पता दोस्त का इसी मुहल्ले में कबसे
हार गया दस्तक दे–देकर सारे घर सुनसान मिले

अँधियारे सन्नाटे में मैं घूमा था जिन गलियों में
खामोशी से चलते–फिरते कुछ साये अनजान मिले

थी उम्मीद किसानों को, बरसेंगे बादल खेतों में
ओलों में चोओं से घायल सीनों में अरमान मिले

इश्क मुहब्बत की सब बातें यादों की बारात बनी
जब–जग कहीं सजी महफिल 'हरि' यार बिना बेजान मिले।

मुहब्बत किया तो तड़पना होगा
ख़्यालों से हर दिन उलझना पड़ेगा

फ़ानी जहाँ से सभी को है जाना
जनमने वाले को मरना पड़ेगा

किनारे–किनारे चलेंगे कहाँ तक
कहीं तो भँवर में उतरना पड़ेगा

जो कहते पलभर जुदा हम न होंगे
उन्हें भी किसी दिन बिछड़ना पड़ेगा

जवानी में चलता अकड़कर उसे भी
बुढ़ापे में डंडा धरना पड़ेगा

किसी का भी अहसां बहुत मत उठाना
कि एक दिन उसे भी चुकाना पड़ेगा

वो जिस यार से मिल रही ढेर खुशियाँ
जुदा हो के उससे तड़पना पड़ेगा

जवानी है 'हरि' से महज़ चार दिन की
गुजर जाएगी तो तरसना पड़ेगा।

लघुशोध

आदिवासी जनजाति के बहुविध संघर्षों के समक्ष उनके जन जीवन की चुनौतियाँ

अनामिका पंचकुमार कौशल
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सरदार पटेल विश्व विद्यालय
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात
मो.– 9783178424

आदिवासी मानव समुदाय का जीवन विविध संघर्षों तथा कठिनाइयों से घिरा होता है। आदिवासी जनजाति की समस्याएँ वैश्विक रूप से पूरे भारत देश में व्याप्त हैं। आदिवासी मानव प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को अपने जीवन–यापन का आधार बनाते हैं। पर वैश्विक स्तर पर कुछ स्वार्थ हित पूर्ति के कारण जंगलों–पहाड़ों को समाप्त कर व्यवसायी केंद्र स्थापित किए जा रहे हैं, जिससे जनजाति को आवास, भोजन, रोजी–रोटी आदि विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आदिवासी जनजाति प्राचीन काल से ही सवर्णों द्वारा उपेक्षित, शोषित तथा पीड़ित रहे हैं। वर्तमान में भी इस पर विमर्श जोरों पर है। ''आदिवासी विमर्श बहुत पुराना विषय है। सभ्यताओं के उदय के साथ ही आदिवासी सवाल का आगमन हुआ है और पूरी दुनिया के साथ हमारे आधुनिक भारत में भी यह उसके एक गणतांत्रिक राष्ट्र बनने से बहुत पुराना है।''[1] अब औद्योगिकीकरण, आधुनिक तकनीकीकरण तथा विकेंद्रीकरण के कारण इनका जीवन मुख्य रूप से प्रभावित होता जा रहा है। इसलिए इन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिनमें कुछ मुख्य रूप से हैं; जैसे–सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आवासीय, स्वास्थ्य, शैक्षिक, आदि समस्याएँ उभर कर आती हैं और इनके जीवन स्तर को कमजोर बनाती है।

आदिवासी समाज अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा आदिवासी समुदाय में सामाजिक समस्याएँ मिलती हैं। सामाजिक स्तर पर इन्हें निम्न तथा हीन दृष्टि से देखा जाता है। सवर्ण सभ्य समाज द्वारा इन्हें अपमानित किया जाता है। आदिवासी समाज में उनकी अलग संस्कृति तथा संस्कार होते हैं, जो उनके समाज में पालन किए जाते हैं। पर उनकी संस्कृति तथा सभ्यता नष्ट होती जा रही है। ''आदिवासी जो वास्तविक रूप में इस देश के उत्तराधिकारी हैं, हमारी व्यवस्था ने उनसे ही अपने अस्तित्व अधिकार के साथ जीने का अधिकार छीन लिया है।''[2] आदिवासी समुदाय में जो समस्या एक विकराल रूप धारण कर रही है, वो है आदिवासी लड़कियों के सतीत्व हरण की समस्या, जो मुख्य रूप से समाज में व्याप्त है। ''इस समस्या पर इतिहासकार लाला जगदलपुरी लिखते हैं, मद्यमांस, नृत्य, गीतों और आकर्षक संबंधों वाली बस्तर की आरण्यसंस्कृति ने महानगरीय सभ्यता को इस कदर प्रभावित किया है कि जहाँ–तहाँ अप्रमाणिक रूप से अपहरणकांड घटते रहते हैं और आदिवासी बालाओं का जीवन बर्बाद होता रहता है।''[3]

आदिवासी समुदाय में कई जनजातीय गरीबी और बेरोजगारी के निम्न स्तर का सामना कर रही है। जिससे भोजन, कपड़े और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी आवश्यकताओं तक पहुँचना मुश्किल हो जाता है। आर्थिक अवसरों में कमी के कारण आदिवासी सदस्यों के लिए अपने समुदाय में रहना और उनकी वृद्धि एवं विकास में योगदान करना मुश्किल बना देती है। जिसके कारण आदिवासी जनजाति में पलायन की समस्या देखी जाती है। ''विकास के जितने भी उपक्रम आदिवासी इलाकों में तय किए जाते हैं, उनमें आदिवासियों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाती है, इसलिए उन्हें अन्यत्र बसा देने या मुआवजा देने की सिर्फ बातें की जाती है। यही कारण है कि समस्याओं व विकास के उपक्रमों को लेकर आदिवासी विरोध प्रखर हुआ है।''[4]

आदिवासी समुदाय को राजनीतिक चुनौतियाँ भी झेलनी पड़ती हैं। जनजातीय समुदायों को अक्सर सरकारी निकायों में सीमित प्रतिनिधित्व का सामना करना पड़ता है। आदिवासी समुदाय को अपनी भूमि और संसाधनों पर सीमित नियंत्रण होता है। ऐसे जिससे सरकारों और अन्य हितधारकों के साथ टकराव हो जाता
है। जनजातीय समुदाय को अक्सर बड़े समाज से भेदभाव और हाशियाकरण का सामना करना पड़ता है। जो संसाधनों और अवसरों में उनकी पहुँच सीमित कर दी जाती है। ''आदिवासी समुदाय को भारत में ब्रिटिश शासन काल में पहली बार अपने इस मूल आवश्यकताओं पर प्रतिबंध की स्थिति का सामना करना पड़ा। इसी सिलसिले में आदिवासी विद्रोही हो गए और उन्होंने आंदोलन छेड़ दिया।''[5]

आदिवासी जीवन में आवासीय चुनौतियाँ एक विशिष्ट जनजाति और उसके स्थान, इतिहास और संस्कृति के आधार पर भिन्न हो सकती है। हालाँकि कुछ सामान्य कई जनजातीय समुदाय को करना अपर्याप्त और जर्जर आवास के साथ संघर्ष करते हैं। कुछ जनजातियों के पास घरों को बनाने या बनाए रखने के लिए संसाधनों की कमी है, जो सुरक्षित और रहनेयोग्य नहीं है। आदिवासी जनजाति को भूमि के स्वामित्व और प्रबंधन से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जबरन पुनर्वास या ऐतिहासिक अन्याय के कारण कुछ जनजातियों ने भूमि खोदी है। जबकि अन्य प्रतिस्पर्धी हितों या कानूनी मान्यता की कमी के कारण अपनी भूमि पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं। जनजातीय समुदाय में प्रदूषण प्राकृतिक आपदाओं और जलवायु परिवर्तन जैसे पर्यावरणीय खतरों के कारण भी आवासीय समस्या उत्पन्न होती है। क्योंकि ये आजीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर होते हैं।

आदिवासी जनजातियों को स्वास्थ्य संबंधी समस्या दूरदराज के इलाकों में रहते हैं और बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुँच रखते हैं, जिससे रुग्णता और मृत्यु दर में वृद्धि होती है। जनजातीय समुदाय में विशेषकर स्वास्थ्य चुनौतियों में एक कुपोषण है। जनजातीय आबादी अक्सर पारंपरिक खाद्य स्रोतों पर निर्भर रहती हैं। जो पर्याप्त पोषण प्रदान नहीं कर सकते हैं। कुपोषण से विकास अवरुद्ध हो जाता है और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली हो सकती है, जिससे जनजातीय समुदाय संक्रामक रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। जनजातीय समुदायों को तपेदिक, मलेरिया और एचआईवी–एड्स सहित संक्रामक रोगों की उच्च दर का भी सामना करना पड़ता है। स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुँच और उपचार के बारे में जागरूकता की कमी के कारण इन बीमारियों का अक्सर पता नहीं चल पाता है और इलाज नहीं किया जाता है, जो विभिन्न बीमारियों को जन्म देता है। आदिवासी समुदायों में मानसिक स्वास्थ्य एक महत्त्वपूर्ण चिन्ता का विषय है। इन समुदायों में भेदभाव और सामाजिक अलगाव सहित सामाजिक अवसाद, चिंता और अन्य मानसिक स्वास्थ्य विकारों की उच्च दर का कारण बन सकती है।

आदिवासी समुदाय में शैक्षिक चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। आदिवासी जनजाति में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अभाव होता है। कई समुदाय को उनके दूरस्थ स्थान बुनियादी ढाँचे की कमी और गरीबी के कारण

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच नहीं होती है। इससे बच्चों का नियमित स्कूल जाना, शिक्षकों को शिक्षा प्रदान करना मुश्किल हो जाता है। कई समुदाय में उनकी अपनी भाषा है, जो स्कूलों में शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकती है। यह उन छात्रों के लिए अवरोध पैदा करता है, जिससे पढ़ाये जा रहे पाठों को समझने के लिए संघर्ष करते हैं। आदिवासी समुदायों में औपचारिक शिक्षा को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। इसके बजाय पारंपरिक ज्ञान और कौशल को प्राथमिकता देते हैं। इनमें शिक्षा के संबंध में लैंगिक असमानताएँ भी पाई जाती हैं, जिससे महिलाओं के सामने शिक्षा की चुनौतियाँ सामने आती हैं। शिक्षा से ही महिलाएँ सशक्त हो सकती हैं, पर उनकी शिक्षा तक पहुँच सीमित होती है। शिक्षा की कमी के कारण आदिवासी महिलाओं को कौशल और ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ''भँवरी देवी जो शिक्षा का प्रसार और अज्ञान, कुसंस्कारों का विरोध कर रही थी, उन पर सवर्णों ने बलात्कार किया। आदिवासियों ने भी वीरभूम में आदिवासी लड़की को 9 किलो मीटर तक नंगा घुमाया था। दूसरी ओर आदिवासी लड़की को गैर जाति के लड़के से प्रेम करने के कारण 25 हजार का जुर्माना लगाया जाता है।'' इस प्रकार शिक्षा की कमी के कारण उनकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति नहीं हो पाती है, इसके लिए शिक्षा को महिलाओं तक पहुँचाना चाहिए।

निष्कर्ष – इस प्रकार आदिवासी समुदाय की चुनौतियों से निपटने के लिए व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। सरकारों एवं नागरिक समाज संगठन के समुदायों को आदिवासी समाज के कल्याण हेतु सहायक वातावरण को बनाने के लिए मिलकर काम करने की आवश्यकता है। आदिवासी समुदाय को आत्म निर्णय लेने का बढ़ावा देने तथा हितधारकों के सहयोग और साझेदार को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसलिए ऐसे समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो इनके विभिन्न जटिल बुनियादी ढाँचे, सांस्कृतिक मूल्यों सामाजिक–आर्थिक स्थिति आदि चुनौतियाँ शामिल हों। संदर्भ – प्रथम आदिवासी विमर्श – पृ. 5

बहुविषयी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका– जनकृति – जुलाई (63) भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श– पृ–12

दो गीत

अंजनी वर्मा
ई–102 रोहन इच्छा अपार्टमेंट
भोगनहल्ली विद्यामंदिर के पास
बेंगलुरू–560103

यह समय

(मणिपुर घटना पर आधारित)

यह समय
खामोश रहने का नहीं है
इस तरह हैवानियत का
खेल जो खेला गया
आदमी की असलियत वह
खोल करके रख गया
और हाकिम सोचते हैं
चाल अब ऐसी चलें
जल रहे हैं लोग इनपर
रोटियाँ हम सेंक लें
दरिंदगी पर
भी सियासत हो रही है

नारियों के चीर हरने
को कहें पुरुषार्थ जो नर
डूबकर कुकृत्य में भी
जी रहे हैं वे सिर उठाकर
भार सागर औ पहाडों
को उठा लेती है वसुधा
पर बहुत मुश्किल है स्त्री
पीड़कों को झेल सकना
त्रास में डूबी
तड़पती यह मही है

कुछ कभी घटता है कहीं
तो भोगना औरत को पड़ता
दंड हो या खेल, तन तो
स्त्रियों का ही उघड़ता
रौंद दी जाती है पैरों
के तले मिट्टी–सी नारी
जानवर भी हैं न इतने
क्रूर ऐसे अनाचारी
क्यों पिशाची
सिलसिला रुकता नहीं?

मेरे गीत तुम्हारे मीत

मेरे गीत तुम्हारे मीत
सदा तुम्हारे पास रहेंगे
कितनों का संवल बनकर तो
कितनों की बन आस रहेंगे

अपनी साँसें दे–देकर के
अक्षर का संसार रचा है
धड़कन बीच बसाकर उसमें
जीवन का संचार किया है
दिल की मिट्टी से उपजे वे
फूल, सुरभि बन साथ रहेंगे
मेरे गीत तुम्हारे मीत
सदा तुम्हारे पास रहेंगे

शब्दों–शब्दों की आँखों में
अपना ही चेहरा देखोगे
अपनी बातें सुना करोगे
स्वप्न और इतिहास सुनोगे
दूरी मन की जो पाटेंगे
शब्दसेतु वे खास रहेंगे
मेरे गीत तुम्हारे मीत
सदा तुम्हारे पास रहेंगे।

यात्रा संस्मरण

एक महँगी भूल

राजेन्द्र नागदेव
दानिकुंज, कोलार रोड, भोपाल
मो.–8989569036

अमेरिका की यह दूसरी यात्रा है। हमारे सामने अनिर्णय की स्थिति तो थी, पर अंततः जाने का निर्णय कर ही लिया। आशंका यह थी कि हवाई अड्डों पर जाँच में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर उचित प्रकार से दे सकेंगे अथवा नहीं। वृद्ध हो गए हैं। मस्तिष्क के तंतु निर्बल हो गए हैं। यात्रा पर मुझे और पत्नी शीला को ही जाना है। हमारे साथ कोई युवा साथी नहीं होगा; किंतु विदेश प्रवास पर जाने का रोमांच भी है। विदेशों में नये अनुभव होते हैं। संसार के अपरिचित पक्षों से परिचय होता है। पूर्व में भी विदेश यात्राएँ की हैं; किंतु वे उम्र के युवा चरण में की थीं। तब ऐसी कोई चिंता नहीं थी। अब स्थिति भिन्न है।

विमान हमें दिल्ली से लेना है। भोपाल से मैं और पत्नी रेल द्वारा सुबह दिल्ली आ गए हैं। निजामुद्दीन स्टेशन से सीधे गुड़गाँव आए। यहाँ दूर की एक रिश्तेदार के घर ठहरे हैं। हमारी उड़ान कल रात को है। मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है। प्रवास के लिए स्वस्थ्य रहना जरूरी है, इस कारण गुड़गाँव से दिल्ली जाने का पूर्व कार्यक्रम स्थगित कर दिया। दिल्ली में दीर्घकाल तक, लगभग चालीस वर्ष रहे थे। अनेक मित्र हैं वहाँ, दिलशादगार्डन के पड़ोसी हैं ही। डीयर पार्क की साहित्यिक मंडली है–सर्वश्री विश्वनाथ त्रिपाठी, हरिनारायण, भारतेन्दु मिश्र, रमेश प्रजापति, बलराम अग्रवाल, अशोक गुजराती आदि स्नेही मित्र हैं। सबसे मिल लेने का अच्छा अवसर था। मिलना संभव नहीं हुआ। जिनके घर ठहरे हैं, वे डाक्टर हैं। उन्होंने कुछ गोलियाँ दीं। शाम तक स्वास्थ्य ठीक हो गया। कल रात्रि साढ़े बारह बजे की उड़ान है। जल्दी ही सो गए। कल पूरी रात संभवतः सोने का अवसर नहीं मिलेगा।

उड़ानवाला दिन। मौसम ठीक नहीं है। सुबह से ही आकाश मेघाच्छन्न है। वर्षा हो रही है। हमने अंतिम रूप से सामान जमाया। यात्रा में कड़ाके की ठंड का सामना करना पड़ेगा खास कर पेरिस में। अतः मैंने पहनने के लिए जैकेट निकाल लिया। यहाँ कुछ गर्मी है। हमारी मेजबान और पत्नी का कहना था–जैकेट नहीं पहनें, गर्मी लगेगी। बैग में रख लेते हैं। हवाई अड्डे पर पहुँचकर निकाल लेंगे। मुझे इस बात की आशंका थी कि हवाईअड्डे पर हम बहुत व्यस्त होंगे। हो सकता है जैकेट निकालने का ध्यान नहीं रहे। मेरी नहीं सुनी गई। दो महिलाओं के सामने हथियार डाल देने पड़े। नियत समय साढ़े आठ बजे हम कार द्वारा इंदिरा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डे के लिए निकल जाते हैं। हवाईअड्डा लगभग 18 किलोमीटर दूर है।

हवाईअड्डे पर औपचारिकताएँ पूरी करते हैं। सामान बुक किया जा चुका है। व्हीलचेयर के लिए पहले से आवेदन कर दिया था। दो व्हीलचेयर आ जाती हैं। जैसे ही व्हीलचेयर चलानेवाले व्यक्ति हमें लेकर आगे जाने लगते हैं, मुझे जैकेट का ध्यान आता है। मेरी आशंका सही निकली। हमें बैग जमा करने से पहले जैकेट निकालने का ध्यान ही नहीं रहा। वह सामान के साथ जा चुका था। उसे वापस लेना अब संभव नहीं था। एक जरा–सी भूल से अनावश्यक समस्या खड़ी हो गई। हमें व्हीलचेयर से बड़े हॉल में ले जाकर खड़ा कर दिया गया। व्हीलचेयर चलानेवाले कर्मचारी चले गए यह कहकर कि हम उसी स्थान पर रहे। वे समय पर हमें विमान तक पहुँचाने के लिए आ जाएँगे। मुझे जैकेट वाली समस्या विचलित कर रही है। विमान के अंदर और पेरिस हवाईअड्डे पर ठंड का सामना कैसे करूँगा?मैंने केवल एक पतली सी कमीज पहन रखी है। पत्नी को मेरी बात नहीं मानने का पश्चात्ताप हो रहा है, पर अब कुछ नहीं किया जा सकता।

सामने छोटी–छोटी अनेक दुकानें हैं। दुकानें सीध में नहीं घुमावदार आकार में हैं। मुझे लगा कि किसी दुकान में सस्ता–सा स्वेटर मिल जाए तो ले लूँ। मैं पत्नी को वहीं छोड़ दुकानों की तरफ निकल जाता हूँ। तरह–तरह के सामानों की अनेक दुकानें हैं, किंतु कहीं स्वेटर नहीं है। बहुत घूमने के बाद एक दुकान पर स्वेटर और जैकेट दिखाई दिये। बड़ी आशा से वहाँ गया। दुकानदार को मैंने अपनी व्यथा सुनाई और उससे सबसे सस्ता स्वेटर दिखाने को कहा। उसने दिखाया और मूल्य बताया, तो होश उड़ गए। भारतीय मुद्रा में उसका मूल्य सात हजार रुपए था। निकट की अन्य दुकान पर भी वैसे ही वस्त्र देखकर वहाँ गया। मूल्य वहाँ भी वही था। मैं दुकानें देखते–देखते थक चुका था। उधर पत्नी अकेली थी। मैं निराशा के साथ लौट गया। उस घुमावदार बाजार में से वापसी के लिए मैं जिस भी दिशा में जाता घूम फिरकर एक ही बिंदु पर लौट आता था। मैं भटक गया था। बहुत समय हो चुका था और वापसी का रास्ता सूझ नहीं रहा था। किसी से पूछता भी तो क्या पूछता! घबराहट मन पर छाने लगी थी। सबसे बड़ी चिंता थी कि विमान छूटने का समय निकट आता जा रहा था। सौभाग्य से अंततः सही रास्ता मिल गया।

मेरे वहाँ पहुँचने के कुछ पलों में ही व्हीलचेयर वाले आ गए। मुझे यदि कुछ समय और लग जाता, तो पता नहीं स्थिति क्या होती! ऐसी गलती कभी बड़ी समस्या बन सकती है। इतनी देर हो जाने से पत्नी की क्या अवस्था हुई होगी, कल्पना की जा सकती है। मुझे सबक मिला कि किसी अपरिचित स्थान पर किसी भी परिस्थिति में साथ के व्यक्ति को छोड़कर दूर तक नहीं जाना चाहिए। केवल उतनी दूरी तक जाएँ, जहाँ से वह दृष्टि की सीमा में रहे। मेरे सामने अब ठंड में पतली–सी कमीज में ही अमेरिका के

कोलम्बस (इंडियाना राज्यवाले, अमेरिका में कोलम्बस नाम के कम से कम तीन शहर हैं) शहर तक 27–28 घंटे की यात्रा करने के सिवा कोई चारा नहीं है। सुना था कि हृदय रोगियों के लिए अधिक ठंड खतरनाक होती है। मुझे हृदय सम्बंधी समस्या है, अतः चिंता स्वाभाविक ही थी। सोचा, जब कोई विकल्प ही नहीं है तो ठीक है, जो होगा देखा जाएगा। कभी–कभी निर्विकल्पता भी साहस बन जाती है। ध्यान आगे के प्रवास पर केन्द्रित कर लिया। व्हीलचेयर लेने का बड़ा लाभ यह हुआ कि हवाईअड्डे की सारी औपचारिकताएँ चेयर खींचनेवाले कर्मचारियों ने ही पूरी करवा दीं। हमें कुछ नहीं करना पड़ा। यही लाभ पेरिस के हवाईअड्डे पर भी मिला। वहाँ संभावना होती है कि कर्मचारी–अधिकारी आपसे फ्रांसिसी भाषा में बात करें। फ्रांस में अंग्रेजी के प्रति गहन शत्रुभाव है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे 1984 में पेरिस यात्रा में हुआ था।

हमारा विमान रात्रि के साढ़े तीन बजे पेरिस के लिए प्रस्थान करता है। पेरिस तक का प्रवास नौ घंटों का है। इस सम्पूर्ण कालावधि में विमान हवा में ही रहेगा और एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों के ऊपर से उड़ेगा। अंदर बहुत ठंड है। मैं विमान में दिये गए पतले से कम्बल को अच्छी तरह लपेट लेता हूँ। गर्मी के लिये तकिये को छाती से चिपटा लेता हूँ। बाहर गहरा अंधेरा है। कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। हम सोने की कोशिश करते हैं।

पेरिस हवाईअड्डे पर विमान तय समय से कई घंटे देरी से पहुँचा। ठंड की वास्तविक समस्या का सामना यहाँ करना पड़ा। विमान से बाहर आकर देर तक व्हीलचेयर की प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब दो–एक लोगों को विमान में दिये गए कंबल लपेटे हुए देखा तो लगा कि मुझे भी एकाध ले आना चाहिए था। अब तो न कंबल है, न तकिया है मेरे पास, लगभग शून्य अंश के तापमान में मात्र एक पतली कमीज का ही सहारा है। हमें अगली उड़ान पकड़ने के लिए हवाईअड्डे से बाहर निकल कर उसके दूसरे हिस्से में जाना है जो बहुत दूर है। हल्की बारिश हो रही है। व्हीलचेयर भी नहीं आई। हम ठिठुरते हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ देर में दो व्हीलचेयर आ गई। हम उनमें बैठ जाते हैं। एक छोटे ट्रक की तरह ऊपर से खुली गाड़ी आती है। हमें इसमें जाना है।

व्हीलचेयरों को उसमें चढ़ा दिया जाता है। धूप नहीं निकली है। हल्की बूँदाबांदी वातावरण में उदासीनता, जो बादलों वाले धूप रहित दिन के वातावरण में होती है। आसपास बड़े–बड़े विमान खड़े हैं। पीली पोशाक में हवाईअड्डे के स्त्री–पुरुष कर्मचारी दक्षतापूर्वक अपने कर्तव्य में जुटे हैं। इनमे कुछ भारतीय भी हैं। गाड़ी लगभग पंद्रह मिनट चलती रही। हम उतर कर पुनः हवाई अड्डे की

इमारत में जाते हैं। यहाँ हमारी और सामान की जाँच हुई। इसके बाद हमारे पास व्हीलचेयर नहीं थी। हम पैदल ही
अपना सामान लेकर उस टर्मिनल की और चले जहाँ से अगली उड़ान के लिए विमान लेना था। पेरिस हवाईअड्डा बहुत विशाल है। एक टर्मिनल से दूसरे तक जाने में चलित पथ होने के बावजूद कभी–कभी आधा घंटा लग जाता है। हम लगभग बीस मिनट चल कर अपने टर्मिनल वाले प्रतीक्षाकक्ष में पहुँचे। यहाँ चार घंटे प्रतीक्षा करनी थी। प्रतीक्षागृह की काँच की दीवारों से बाहर दूर दूर तक का दृश्य नजर आ रहा है। विमान आ रहे हैं, जा रहे हैं। हमारी उड़ान का समय हो चुका है और व्हीलचेयर वाले नहीं पहुँचे हैं। वहाँ का एक कर्मचारी कहता है–आपका विमान वह सामने दिखाई दे रहा है। क्या आप वहाँ तक पैदल जा सकेंगे?हम हामी भरते हैं और अपना सामान उठाकर चल पड़ते हैं। हमारी सीटें खिड़की के पास वाली है। बाहर का दृश्य अच्छी तरह दिखाई दे रहा है। विमान कुछ ही देर में भूभाग को पार कर अटलांटिक महासागर के ऊपर उड़ने लगता है। आगे अमेरिका तक पूरी उड़ान समुद्र के ही ऊपर होगी। मुझे प्यास लग रही है। विमान परिचारिका से पानी माँगता हूँ। वह हाँ कहकर आगे चली जाती है और भूल जाती है। वह बहुत व्यस्त है। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद मैं कुछ चिढ़कर फिर पानी माँगता हूँ। वह अपनी व्यस्तता का हवाला और आश्वासन देकर फिर निकल जाती। इतने बड़े विमान में सैंकड़ों यात्रियों की सेवा के लिए मात्र तीन परिचारिकाएँ और एक परिचारक ही हैं। अन्य लोग भी अपनी माँगों की पूर्ति न होते देख परिचारिका पर नाराज हो रहे हैं। परिचारिका रुआँसी होकर अपनी कठिनाई बताती है, तब अहसास होता है कि चमकदमक वाली इस नौकरी में परिचारिकाएँ वास्तव में कितनी वेदना से गुजरती हैं। कुछ देर में पानी मिल जाता है। पृथ्वी की सतह से विमान की ऊँचाई समय–समय पर बताई जा रही है। कभी विमान 48000 तो कभी 52000 फुट की ऊँचाई पर चला जाता है। बाहर बहुत तेज धूप है। इसलिए है कि हम बादलों से बहुत अधिक ऊँचाई पर उड़ रहे हैं। बहुत नीचे बादल ऐसे लग रहे हैं, मानो क्षितिज तक कपास–ही–कपास बिछा हो। बादल पृथ्वी की सतह से चिपके हुए लग रहे हैं। मन यह सोचकर अचंभित है कि क्या शुभ मुलायम, निर्दोष ये बादल वे ही हैं, जो हमें धरती से आकाश में बहुत ऊँचाई पर प्रतीत होते हैं। क्या ये वही बादल हैं, जिनका वर्षा ऋतु मैं गर्जन–तर्जन और उनमें बिजलियों का कड़कड़ाना हृदय को दहला देता है। बादलों के मध्य कहीं–कहीं खुले स्थानों से नीला समुद्र जल दिखाई देता है। धूप में छोटे–छोटे खिलौनों–सी पाल वाली नावें और कभी–कभी जहाज दिखाई दे जाते हैं। अद्‌भुत मनमोहक दृश्य है। हम पृथ्वी को पृथ्वी के बाहर से देख रहे हैं। अब शेष पूरी यात्रा इसी तरह समुद्री जल के ऊपर से होगी। कोई दृश्य कितना भी सुन्दर हो, उसकी निरंतरता उकताहट पैदा कर देती है। हम बीच–बीच में नींद लेने का उपक्रम करते हैं या सामने वाली सीट के पीछे लगे टीवी के पर्दे पर फिल्म देखकर समय बिताने की चेष्टा करते हैं।

विमान नीचे उतर रहा है। सिनसिनाटी हवाईअड्डे पर व्हीलचेयर के लिए कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ती है। व्हीलचेयर तो दो उपलब्ध हो गई, किंतु चलाने वाला एक ही व्यक्ति मिला। उसने कुछ देर तक दूसरे की राह देखी, फिर अकेला ही एक–एक हाथ से दोनों चेयर चलाते हुए हमें ले गया। बहुत स्वस्थ लंबा व्यक्ति है।
एक ही हाथ से व्हीलचेयर को इतनी कुशलता से घुमा फिरा, मोड़ रहा था, जैसे किसी खिलौने से खेल रहा हो। सिनसिनाटी बहुत बड़ा हवाईअड्डा नहीं है। चैकिंग संबंधी सारी प्रक्रिया कुछ ही मिनटों में पूरी हो गई। हमने यह सावधानी बरती थी कि अपने साथ कोई खाद्य पदार्थ नहीं रखें, अन्यथा अधिक गहन जाँच होने की संभावना होती है और व्यर्थ ही समय नष्ट होता है। जाँच करने वाली महिला अधिकारी ने अचार, पापड़, चटनी जैसे कुछ हिन्दी शब्द अंग्रेजी लहजे में बोलते हुए पूछा कि इनमें से कुछ हमारे पास है क्या?हमारा सकारात्मक उत्तर सुन उसे अचंभा हुआ। सामान्यतः भारत से जाने वाले सभी बुजुर्ग वहाँ रह रहे अपने बच्चों के लिये ये खाद्य पदार्थ ले ही जाते हैं।

व्हीलचेयर खीचनेवाले व्यक्ति ने हमें चेयर सहित हवाईअड्डे के अंदर ही चलनेवाली तीन डिब्बों की चालक रहित रेलगाड़ी के डिब्बे में धकेल दिया। हम गाड़ी से हवाईअड्डे के निगम वाले भवन में आ गए। मैंने आसपास दामाद अमित को ढूँढने की कोशिश की। वे कहीं दिखाई नहीं दिये। व्हीलचेयर खींचनेवाले व्यक्ति का काम हो चुका था। चाहता तो हमें छोड़कर जा सकता था। उसने वैसा नहीं किया। कुछ देर तक देखा कि हमें लेने कोई नहीं आया है, तो उसने मुझसे अमित का फोन नम्बर लिया और फोन करने ही वाला था कि अमित सामने से आते हुए दिखाई दिए। अमित ने उस व्यक्ति को टिप दी और हम उनके साथ घर के लिए रवाना हुए। बाहर बहुत ठंड है। एक पतली–सी कमीज में मेरी यह लंबी यात्रा लगभग समाप्त हो गई। कार में बैठने पर अच्छा लगा। सिनसिनाटी से कोलंबस घर तक पहुँचने में हमें दो घंटे लग गए। शहर से बाहर एकदम खुले क्षेत्र में 35–40 घरों की छोटी–सी कॉलोनी है। आसपास खूब वृक्ष और छोटी–बड़ी पहाड़ियाँ हैं। यह पतझड़ का मौसम है। वृक्ष पर्णविहीन हैं। सभी मकानों में तलघर है और उसके ऊपर दो मंजिले हैं। तलघर यहाँ की अनिवार्यता है। यहाँ अक्सर भयंकर चक्रवाती तूफान (टारनेडो) आते हैं। उनसे बचने के लिए लोगों को तलघर में शरण लेनी पड़ती है। वैसे स्थानीय नागरिक प्रशासन द्वारा ऐसी आपात स्थिति के लिए कुछ
स्थानों पर शरणस्थल बनाए गए हैं। किंतु आपात स्थिति में वहाँ तक पहुँचना भी दुष्कर हो सकता है, अतः मकान खरीदते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उसमें तलघर हो।

बाहरी तापमान का घर के अंदर कोई प्रभाव नहीं है। यहाँ सब घर वातानुकूलित होते हैं। विमान यात्रा के समापन पर उसका प्रभाव (जेटलेग) कुछ दिनों तक रहता है। दिन में नींद आती है। रात जागते हुए बीतती है। हमारे साथ यह हो रहा है। आखिर सबकुछ तो उलट गया है। हम अब पृथ्वी के विपरीत गोलार्द्ध में या पाताल में हैं, जहाँ भारत के दिन के समय रात्रि और रात्रि के समय दिन होता है।

आज बाहर निकले हैं। बादल छाए हुए हैं। हल्की बूँदाबांदी हो रही है। कोलंबस शहर के मुख्य व्यावसायिक क्षेत्र में भ्रमण के लिए निकले। शहर की मुख्य सड़क पर है। इसका नाम 'वाशिंग्टन स्ट्रीट' है। इसे देख मुझे 1984 में देखी लंदन की 'आक्सफोर्ड स्ट्रीट' याद आ गई। बिल्कुल वैसे ही भवन, वैसा ही स्थापत्य भूतल पर दूर तक दुकानें ही दुकानें अंतर मात्र इतना कि यहाँ सब छोटा–छोटा है। उसका यह लघु संस्करण प्रतीत होता है।

एक मनोरंजन केन्द्र में जाते हैं। यहाँ एक बहुत बड़ा हॉल है। बाहर बच्चों के खेलकूद के लिए साधन हैं। लगभग पचास फुट ऊँची धातु की संरचना है। बच्चे, किशोर–किशोरियों और उनके साथ उनके अभिभावक भी उसपर चढ़ रहे हैं, उतर रहे हैं, कलाबाजियाँ कर रहे हैं। हम हॉल में बैठ जाते हैं। इसके ऊपर एक सभागृह है। ईसाई लोग धार्मिक वेशभूषा में ऊपर जा रहे हैं। इनमें हर आयु वर्ग के हैं, अधिकतर वरिष्ठ नागरिक। कोई धार्मिक आयोजन है आज वहाँ। आसपास अधिकतर श्वेत–अश्वेत अमेरिकी, जापानी और भारतीय दिखाई दे रहे हैं। भारतीयों में अधिकांश दक्षिण भारतीय हैं। हल्की बरसात और ठंडक के कारण वातावरण उदास उदास–सा है। हमारे पास करने को विशेष कुछ नहीं है। बैठे–बैठे बाहर खेल रहे बच्चों–बड़ों को देख रहे हैं। ऊपर कार्यक्रम इतनी शांति के साथ चल रहा है कि लग ही नहीं रहा वहाँ कुछ हो रहा है। पत्नी और बेटी ऊपर जाती हैं। आकर बताते हैं कि कोई तामझाम नहीं है। केवल एक क्रॉस है। उसपर काला कपड़ा डाला हुआ है। पादरी शांत स्वर में धार्मिक ग्रंथ में से कुछ पढ़ रहे हैं। मेरे सामने अनायास भारत के मंदिरों में और मोहल्लों हैं। दूसरों के अधिकारों का हमारे लिए कोई अर्थ नहीं होता। यहाँ दूसरों के अधिकारों का समुचित सम्मान किया जाता है। इसी सभागृह में अक्सर यहाँ का भारतीय समुदाय भी अपने समारोह आयोजित करता है। हम हॉल से बाहर आते हैं। हल्की बारिश में वाशिंग्टन स्ट्रीट पर टहलते हैं। यहाँ की अधिकांश इमारतें एक बहुत बड़ी कम्पनी 'कमिन्स' द्वारा बनाई गई हैं। इस शहर के बहुत बड़े भाग पर इस कम्पनी का ही स्वामित्व है। कोलंबस शहर से इस प्रथम परिचय के बाद घर लौट आते हैं।

कहानी

चौखट

रामेश्वर महादेव वाढेकर
शोधकार्य में अध्ययनरत
मो.–9022561824

कई दिनों से दिल की बात कहनी थी। कैसे बताऊँ, समझ नहीं रहा। आज किसी भी हालात में बताऊँगा। तभी दिल को सुकून मिलेगा। वह सिग्नल पर दिखाई दी। इसके पहले कई बार दिखी थी। उसे पहली बार भी वहीं देखा। देखते ही मैं प्रेम में डूब गया। मेरे बारे में उसके क्या विचार हैं, पता नहीं। उसे देखने हर दिन यहाँ आता, किन्तु बोलने की हिम्मत अभी तक नहीं हुई। सामने खड़ी है नजरों के, उतने में सिग्नल छूटा। पीछे से गाड़ियों के हॉर्न बज रहे थे। मुझे सुनाई या दिखाई नहीं दिया, उसके बिना। ट्राफिक पुलिस ने गाड़ी साइड में लगाने का इशारा किया। कुछ समय बाद गुस्से में कहा–"आपको नियम समझ नहीं आता।''

''सर, मुझसे गलती हो गई मैं फाइन भरने को तयार हूं।'' – ''जल्दी फाइन भरो। यहाँ से रफा–दफा हो।''

दिल में इच्छा न होकर भी गाड़ी शुरू की। धीरे–धीरे गाड़ी चला रहा था, उसकी तरफ देखकर। गाड़ी की तरफ वह आती दिखाई दी। मैंने गाड़ी खड़ी की। गाड़ी में बैठा रहा। उसने गाड़ी का शीशा खटखटाया। मैंने दरवाजे का शीशा नीचे किया, बाद में नीचे उतरा। उसके तरफ देखता रहा। वह बोली जा रही थी, मैं सिर्फ सुनता रहा।

उसने जोर से कहा–''मैं आपको बहुत दिनों से देखती हूँ। आप अनेक बार सिग्नल छूटने के पश्चात् भी वहीं खड़े रहते हैं। आपसे पुलिसवाला किस तरह बातें करता है, यह मैंने सुना, देखा। आप संस्कारी व्यक्ति दिखते हैं, दूबारा ऐसा मत करो।''

मैं देखता ही रहा। कुछ समय बाद मैंने कहा–''जी, दूबारा गलती नहीं होगी। जोरों से साँस ली और कुछ कहने की हिम्मत जुटा रहा था, लेकिन कह नहीं पाया।''

उसने कहा–'आप को कुछ कहना है।'

'जी, कैसे बताऊँ, समझ नहीं आ रहा।'

"जो दिल में है, बता दो। मुझे बुरा नहीं लगेगा। आदत पड़ी है सुनने की।''

–'खुशी, मुझे आपसे प्रेम है।'

–'आप क्या कह रहे हैं, पता है आपको। होश में हैं आप।'

–'हाँ, मैं होश में हूँ। मुझे कई दिनों से दिल की बात बतानी थी। मैं डर के मारे नहीं बता पाया। मुझे समाज, परिवार का डर नहीं था, आपको कैसा लगेगा, इस बात का डर था।''

– 'स्वराज, मैं आपसे प्रेम नहीं करती।'

– 'क्यों?मुझमें कमियाँ हैं, होगी भी! हर मनुष्य में कुछ कमियाँ रहती हैं। मैं आपको पसंद नहीं हूँ, तो आपको भूलाने की कोशिश करूँगा।'

– 'ऐसा कुछ नहीं। आपको कोई भी लड़की पसंद करेगी, आपमें कई अच्छे गुण हैं। मैं ही आपके लायक नहीं हूँ।'

–'मुझे आप पसंद हैं। मैं आपसे विवाह करना चाहता हूँ। सोचने के लिए समय चाहिए, तो आप लीजिए। मुझे आपके हाँ का इंतजार रहेगा।

– 'स्वराज, मैं हिजड़ा, छक्का, किन्नर, नपुंसक, थर्ड जेंडर, तृतीय पंथी आदि नामों से प्रसिद्ध हूं। मुझे मेरे परिवार ने नहीं स्वीकारा, तो समाज, आपका परिवार कैसे स्वीकार करेगा।'

–'खुशी, आप कौन हो?यह मुझे मायने नहीं रखता। आप मुझे पसंद है। मैं तुम्हें दिल से चाहता हूँ। मैं आपके बिना नहीं जी सकता।'

– 'मैं ज्यादा पढ़ी–लिखी नहीं हूँ।'

– 'मुझे कोई दिक्कत नहीं। मैं आपको पढ़ाऊँगा। मेरी माँ समाजसेविका है। हमारे रिश्ते को स्वीकार करेगी। माँ भी तृतीय पंथियों के लिए निरंतर कार्य करती आई है।'

– 'मुझे अभी से डर लग रहा है कि आपकी माँ ने शादी को अनुमति नहीं दी तो?'

–'मैं माँ, परिवार को मनाऊँगा। मैं आपके साथ हूँ। रही बात समाज की, इससे मुझे कोई मतलब नहीं।'

– 'आप मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कर रहे हो, मैं भाग्यशाली हूँ। आप मेरे लिए इतना कर रहे हैं, मुझे बहुत खुशी हुई। मैं तैयार हूँ शादी के लिए, किन्तु मेरा साथ कभी मत छोड़ना। साथ छोड़ा तो मैं जी नहीं सकती। पूरी तरह टूटकर बिखर जाऊँगी।'

– 'साथ कभी नहीं छोड़ूँगा।'

– ''स्वराज, तृतीय पंथियों के बुरे हालात हैं। उनका जीवन नरक बना है। समाज बुरी नजरों से देखता है उनकी तरफ। वे जीकर भी मरे हुए हैं। वेश्या से भी बतर जिंदगी है उनकी। मैंने भी बहुत वेदना सही है। लोग क्या–क्या कहते हैं और क्या–क्या करते हैं, मुझे मालूम है। मैं बया भी नहीं कर सकती। हम सिग्नल, रेल में शौक से खड़े नहीं रहते हमारी मजबूरी है। उन्हें कोई काम पर रखता नहीं। रख भी लिया, तो शोषण ही करता, शारीरिक और मानसिक। मैं उनके लिए कार्य करना चाहती हूँ।''

– 'तुम्हारा साथ निरंतर दूँगा, मैं भी उनके अधिकार के लिए संघर्ष करता रहूँगा।'

– ''स्वराज! अभी तक तृतीय पंथियों के लिए कई कानून, बील पास हुए, किन्तु कोई फायदा नहीं। अप्रैल, 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने किन्नर को तीसरे लिंग के रूप में पहचान दी। किन्नर को जन्म प्रमाणपत्र, राशनकार्ड, पासपोर्ट, ड्राइविंग लाइसेंस आदि में तीसरे लिंग के तौर पर पहचान हासिल करने का अधिकार मिला। विवाह करना, तलाक देना, संतान को गोद लेना आदि अधिकार प्राप्त हुए। कुछ वर्ष पश्चात् यानी 2016 में 'ट्रांसजेंडर पर्सन्स' बील पास हुआ, जिससे उन्हें शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्र में खुलकर जीने का अधिकार मिला। कालांतर से यानी 2019 में 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति अधिनियम' बना। इससे तृतीय पंथी के अधिकार का संरक्षण होने वाला था। इन तीनों घटना पर प्रकाश डालने के पश्चात् समझ आता है कि तृतीय पंथियों की समस्या कम नहीं हुई, बढ़ी है।''

– 'खुशी! आप सही कह रही हैं, कानून सिर्फ कागज पर है, अस्तित्व में नहीं। कानून का अमल हो, इसलिए हम संघर्ष करते रहेंगे।'

– 'स्वराज! तृतीय लिंग को सही मायने में मान्यता ही नहीं मिली। बस, रेल, विमान आदि में सफर करने के लिए आरक्षित सीट करने की सुविधा उपलब्ध रहती है, उसमें थर्ड जेंडर पर्याय ही नहीं। इन उदाहरण से उनका अस्तित्व समझ आता है।'

– ''सही है खुशी! मैंने भी थर्ड जेंडर के संदर्भ में जानकारी हासिल की है। उनकी दयनीय अवस्था है। भारत में वर्ष 2009 में लगभग थर्ड जेंडर वर्ग की संख्या पाँच लाख थी, यह मैंने एक रिपोर्ट में पढ़ा है। उन्हें न्याय दिलाना ही हमारा मकसद है। बहुत समय बीता, हम रास्ते पर खड़े हैं। गहन विषय पर चर्चा हुई। अच्छा लगा। चलता हूँ, माँ राह देखती होगी। माँ को सब बताता हूँ, हमारे संदर्भ में। कुछ ही दिनों में माँ आपसे मिलने आएगी।''

खुशी प्रसन्न थी। मन–ही–मन हँसते घर जा रही थी। स्वराज की माँ कब आएगी?मैं उनकी अच्छी बहू बनूँगी। परिवार में घुलमिलकर रहूँगी।

स्वराज को शिकायत करने का मौका नहीं दूँगी। इन सपनों में खुशी घुलमिल गयी। घर कब आया, पता भी नहीं चला। हर दिन स्वराज की माँ का इंतजार करती। बहुत दिन गुजरे, स्वराज की माँ नहीं आई। स्वराज भी दिखाई नहीं दिया। खुद को ही समझाती, होंगे कुछ काम में।

एक दिन सुबह–सुबह बस्ती में एक स्त्री आई। नाम, घर का पता पूछने लगी। मैं दूर से सब देख रही थी। वह घर की तरफ आती दिखाई दी। मैंने खुद को ठीक–ठाक किया। बेल बजी। मैंने दरवाजा खोला, तो सामने महिला दिखाई दी। मैंने नमस्कार किया। अंदर बुलाया। चाय–पानी की। कुछ समय बाद खुशी ने पूछा, "आपका क्या काम है?''

''स्त्री ने कहा–''मैं स्वराज की माँ!''

–'ओह! आप। नमस्कार माँ जी 'खुशी ने प्यार से कहा।'

–'आप क्या करती हैं?'

–'स्वराज ने बताया नहीं।'

–'बताया। तेरे मुँह से सुनना है।'

–"मैं ग्रेजुएट हूँ। लेकिन.....''

–"लेकिन क्या?बताओ।''

–''मैं किन्नर हूँ।''

–''तेरी मेरे बेटे से शादी...यह सोच भी कैसे सकती है।''

–''हम दोनों एक–दूसरे से प्रेम करते हैं। साथ रहना चाहते हैं।''

–''यह कभी संभव नहीं।''

–"आखिर क्यों माँ जी?''

–''हम ठहरे बड़े खानदान के। तू है कि .....''

–''इसमें मेरा क्या कसूर। आप तो तृतीय पंथियों के लिए कार्य करती हैं। और विचार ऐसे!''

–''विचार, कार्य छोड़ दो। मैं क्या कहती हूँ, गौर से सुनो। मेरे बेटे की जिंदगी से दूर जाने के लिए तुझे क्या चाहिए?''

–''माँ जी, मुझे स्वराज चाहिए। और कुछ नहीं।''

–''उसे छोड़कर, कुछ भी!''

–''माँ जी, आप जैसे कहेंगी, वैसे मैं रहूँगी। मुझे आपके बेटे से अलग मत कीजिए। मैं उसके बिना जी नहीं सकती।''

–''तू सब कुछ करेगी, मेरे परिवार और उसके लिए; लेकिन मेरे बेटे को पिता होने का सुख कभी नहीं दे सकती।''

यह सुनकर खुशी कुछ देर निःशब्द रही। उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। सिर्फ स्वराज की माँ तरफ देखती रही। बेहोश हुई। घर में शांतता फैल गई, जैसे घर में कोई मरा हो। कुछ देर बाद स्वराज की माँ चली गई।

माँ शादी की अनुमति देगी या नहीं, यह सवाल स्वराज को सता रहा था। घर पर अकेला था वह, चिंता में डूबा। इतने में घर के बाहर गाड़ी की आवाज आई। वह जाग गया। खिड़की से बाहर देखा, तो माँ की गाड़ी दिखाई दी। कुछ समय बाद माँ ने बेल बजाई। स्वराज ने जल्द से दरवाजा खोला। माँ कुछ भी न बोली। हॉल में जाकर बैठ गई। चेहरे पर गुस्सा था। स्वराज ने कहा, 'माँ पानी लाऊँ?'

'कोई जरूरत नहीं।'

'माँ! आप शांत हो जाइए। मुझसे कोई गलती हुई?'

'तुमसे नहीं, मुझसे हुई, संस्कार देने में।'

'माँ! क्या हुआ?साफ–साफ बताइए।

'तुझे लड़की नहीं मिली, प्रेम करने।'

'माँ, मुझे पता था, आप ऐसे ही बोलेगी। इस कारणवश बताया नहीं था मैंने।'

'स्वराज, दूसरी लड़की से शादी कर।'

'नहीं! मैं उसी से शादी करूँगा। अन्यथा किसी से नहीं।'...

'परिवार की इज्जत मिट्टी में मिलानी है तुझे, यही ठान लिया है न।'

'माँ, तुझे जो समझना है समझ। मैं कोई गलत कार्य नहीं कर रहा।'

'तुझे शादी उसी से करनी है, तो घर से निकल जा, कभी चेहरा मत दिखाना मुझे। मेरी मृत्यु हो जाएगी, तब भी मत आना।'

'मां! खुद का ख्याल रखना। हो सके तो मुझे माफ करना, क्योंकि मैं तुम्हारी नजर में गुनहगार हूँ।'

स्वराज घर से निकल पड़ा, खुशी की बस्ती की तरफ पैदल। समय रात का था। दो बजे घर पहुँचा। दरवाजा खटखटाया। देर से दरवाजा खुला। सामने स्वराज देखकर खुशी घबरा गई। उसे लगा कि स्वराज माँ से झगड़ा करके ही आया है। उन्हें अंदर लिया। पानी दिया। कुछ समय के पश्चात् खुशी ने पूछा, "क्या हुआ?इतनी रात आप...''

– 'खुशी, मैंने जो सोचा था, वैसे कुछ नहीं हुआ। माँ ने शादी को नकारा। मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ, इसी वजह से मैं माँ का घर छोड़कर आया हूँ।'

–'यह आपने अच्छा नहीं किया। माँ के दिल को दुःखाना नहीं चाहिए था।"

–'मेरे पास दूसरा कोई रास्ता नहीं था। मैं घर छोड़कर आया हूँ, माँ के प्यार को नहीं। सब ठीक–ठाक होने के पश्चात् घर जाऊँगा। खुशी! आपकी अनुमति हो, तो हम कल कोर्ट मैरेज करेंगे।'

'जो आपको सही लगे।'

दोस्तों की सहायता से शादी हुई। जिंदगी की नई शुरुआत की। किराए के घर में रहने लगे। कुछ वर्ष बाद स्वराज डॉक्टर बना। दूसरों के अस्पताल में जॉब करने लगा। खुशी ने भी आगे की पढ़ाई जारी रखी। कालांतर से बैंक में शाखा प्रमुख पद पर विराजमान हुई। काम से समय निकालकर तृतीय पंथियों के लिए
निरंतर कार्य करती रही। कार्य में स्वराज भी सहयोग देता रहा। देखते–देखते दोनों ने बहुत प्रगति की। स्वराज ने खुद का अस्पताल बनाया। खुशी ने तृतीय पंथियों के लिए 'समानता ट्रस्ट' नामक संस्था की स्थापना की। वहाँ कई तृतीय पंथी रहने लगे, जिन्हें कोई स्वीकार नहीं करता, उन्हें समानता ट्रस्ट स्वीकारता था। छूट्टी के दिन खुशी वहीं रहती।

खुशी की शादी को दस वर्ष हुए थे। घर में संतान न होने से खुशी दुःखी रहने लगी। किसी को बता भी नहीं पाती। एक दिन स्वराज से हिम्मत करके कहने लगी, 'जिंदगी में संतान आवश्यक है। आपको कभी नहीं लगा, संतान हो।'

– "खुशी! समाज में अनेक स्त्रियाँ हैं, जो बच्चे को जन्म नहीं दे सकती, स्त्री होकर भी। तू दुःखी क्यों होती है?तेरी शरीर रचना ही ऐसी है। तू जन्मतः संतान देने में असमर्थ है, इसमें तुम्हारा क्या दोष?हम अनाथालय से संतान लाएँगे, वह भी लड़की। माता–पिता का दायित्व निभाएँगे।''

–'आप बहुत समझदार हैं। साथ ही परिवर्तनवादी भी! मैं समाज की चौखट में कैद थी। मेरी जैसी अनेक हैं। कई परंपरा ने गुलाम बनाया था मुझे, अंधश्रद्धा के नाम पर। आपने सामाजिक चौखट तोड़कर, मुझसे शादी की। खुद के पैरों पर मुझे खड़ा किया। व्यक्तित्व की पहचान दिलाई। आज मैं जो कुछ हूँ आपके खातिर।''

खुशी! मुझे जो अच्छा लगा, मैंने किया। मुझसे पहले भी कई लोगों ने तृतीय पंथियों से विवाह किया है, इसमें नया कुछ नहीं। यह समय की माँग है। समाज की मानसिकता बदलनी चाहिए। मुझे आप–जैसे कई व्यक्तियों का सहारा बनना है। उन्हें काबिल बनाना है। भले ही समाज की मानसिकता न बदले, मैं निरंतर कार्य करूँगा।

भविष्य में तृतीय पंथियों को समाज में मान–सम्मान मिलेगा। उन्हें उनके अधिकार मिलेंगे। तृतीय पंथियों को संविधान ने अधिकार देने के बावजूद भी समाज अधिकार क्यों नहीं दे रहा, इसके जिम्मेदार कौन है?और ऐसा क्यों हो रहा हैं...?

लघुकथा

सत्यशुचि
साकेत नगर, ब्यावर , (राजस्थान)
मो.–9413685820

1 . बिल का आकार

उसके हाथों में बिजली का बिल था और एक दिवस उसने बिल राशि जमा करवा दी थी, वैसे भी पेश्तर में बिल की वजह से वह जाने क्यों खासा परेशान हो रहा था और जल्द ही एक अनजानी –सी आशंका से धिर–घिरा भी गया था वह।

जब बिल समय पर भरा जा चुका था, तो अभी उसकी परेशानी जरा कम तो हुई और क्षणभर में वह खुद को हल्का–सा अनुभव करने लगा। मगर आज भी वह परेशान कम नहीं था। दरअसल, बिजली का बिल उसने जरूर करवाया था, लेकिन अपना नहीं, बल्कि बंद पड़ोसी घर का। किस्सा का तह यह है कि ये गलती बिजली विभाग के प्राइवेट कार्मिक की थी, जिसने बिल पड़ोसी का उनको सौंप गया था।

तथापि इस पूरी वारदात के तईं वह कमरा देर तक एक बेचैनी से भींग चला था और इसके लिए वह अपने को कहीं–न– कहीं दोषी मानकर चल रहा था, जबकि अगर बिल को एक बार आवश्यक रूप से वह आँख खोलकर देख लेता, तो ज्यादा ठीक था...।

एकाएक उसने महसूसा कि अंततोगत्वा उसकी लापरवाही जिम्मेदार है, वह कार्मिक नहीं। और वह एक नयी चिंता से आहत था।

2 . पंडितजी कहिन

जोतिन से सी.ए. के पेपर क्लियर नहीं हो पा रहे थे, एक मायूसी चहुँओर छायी रहने लगी और यही वजह है कि बार–बार उसके बेटे के प्रयास उसकी कामयाबी पर ब्रेक लगाए जा रहे थे, आखिर करा भी क्या जाएँ...। एक चिंता से घरभर दुखी हो चला था।

शायद, बेटे की ग्रहदशा में ही कोई दोष हो। एक गहरी उदासी में पिताजी ने सोचा और एक दिन पिताजी ने घनश्याम पंडित से सार्थक साधने की ठानी थी।

हालाँकि घनश्याम पंडित की दिनचर्या बेहद व्यस्त, फिर भी घड़ी–घड़ी पिताजी की गुजारिश पर अंत–चंद मिनटों में ही पंडितजी ने जोतिन की जन्मपत्री पर एक दृष्टि डाली, तत्पश्चात् क्षणभर में वह बोले, 'जोतिन के वास्ते पूजा–पाठ करवाना होगा। और लगे हाथ अपने पूजागृह में पंडितजी ने जोतिन को संकल्प भी करवाने में देर नहीं लगाई।

मगर उसी समय पिताजी बुदबुदाये–'चलो, जोतिन की ग्रहदशा अब तो सुधर ही जाएगी। और वह आश्वस्त हो चुके थे।

तीन दिन बाद ही पिताजी ने पंडितजी के घर दस्तक दी और एक तसल्ली से भरे–भरे वह पंडितजी के नजदीक जा बैठे थे

'आप अकेले आये हैं!' पंडितजी आश्चर्य में बोलने लगे।

'हाँ, हाँ, मैं अकेला ही आया हूँ' सहज में उन्होंने बतलाया

'अरे! ज्योति कहाँ है?' हड़बड़ाहट में पंडितजी फटे–'उसके बिना अभी पूर्णाहुति कार्य अधूरा रहेगा समझे!

'पंडितजी, आप क्या कह रहे हैं?' विस्मित–से पिताजी बोले

'हाँ...! इस वक्त ज्योति को बुलाना होगा, पूर्णाहुति के लिए। पंडितजी अपनी ही लय में खोये थे।

'पंडितजी, ज्योति लड़की का नाम है!' पिताजी ने चेताया, जबकि मेरा लड़का जोतिन है...क्या आपने ज्योति नाम से पूजापाठ–जाप किया है?

'क्या...।' पसीने से लथपथ पंडितजी घबरा उठे

'पंडितजी, इसके मायने यह हुआ कि जोतिन स्त्रीलिंग या कि पुल्लिंग...आप खुद ही भ्रमित है और आप जैसे लोग ही पब्लिक को मूर्ख बना–बनाकर यूँ ही ठगते–बूसते रहते हैं...वाह पंडितजी, वाह! और छपाक से पंडितजी को नजरअंदाज करते हुए पिताजी रुआँसे हो गये।

3 . अपनी रफ्तार

शादी के पश्चात् दिन उनके मौज मजे से कट रहे थे। बहरहाल खुशी की बात यह थी कि एक रोज घर में खुशी का चिराग जला था। नवजात संतान के संबंध में पति–पत्नी दोनों ही घने गंभीर दिख रहे थे, फिर भी जाने–अनजाने एक चिंता उनको खाये जा रही थी, इसलिए तत्काल एक निष्कर्ष पर वह पहुँचे थे।

उस दिन अस्पताल की सीढ़ियाँ वह संभल–संभलकर उतरे थे, इतना तो वह कर ही सकते थे कि पलक झपकते वह दोनों मुस्कुराने लगे।

'हाँ, हाँ, सच में, बूँद–बूँद से जैसे घड़ा भरता है, ठीक वैसे ही राष्ट्र की बढ़ती जनसंख्या के आकार के फलीभूत उनकी हम दो, हमारे एक। की सोच–धारणा आज की तारीख में कदापि उनके लिए किसी जश्न–उत्सव से कम नहीं है। वह बुदबुदाया और घड़ी भर में वह दोनों खिलखिलाते–सा एक दूजे में समा गये।

4 . श्मशानवाले

उस श्मशान का भयावह मंजर था, चारो तरफ लाशें ही लाशें। उसका बाप भी कोरोना में मर चुका था और वह अभी लाश के पास खड़े–खड़े थकान से चकनाचूर हो चुका था, छह घंटे का सब्र और वह बिलख–बिलखकर रोता रहा।

तभी उसके जेहन में कुछ सूझा और उसी समय एक श्मशान कर्मचारी के सम्मुख उसने अपना दुखड़ा व्यक्त किया।

ठीक है! कर्मचारी बोला–'लाश को छोड़ जाओ और जल्द ही उसे मैं ठिकाने लगवा दूँगा, समझे!'

अंत–पंत चलते–चलते भारी मन से एकबारगी जमीन पर पड़ी अपने बाप की लाश को डबडबाई आँखों से निहारा और पलभर में वह लड़खड़ाते श्मशान से बाहर आ गया।

मगर सहसा, एक विचार उभरा कि वर्तमान बीमार माँ की देखभाल उसके वास्ते बेहद जरूरी है और इसीलिए वह श्मशानवाले के भरोसे लाश को छोड़कर आया था।

5 . छोटा सुख

एक दिन स्त्री–पुरुष का स्वाभाविक खिंचाव उनको एक–दूसरे के और नजदीक ले आया था और यही एकमात्र मौजमस्ती का आधार था। जबतक इस एक कमरे में उनका साथ चला, तबतक वह काफी खुश–खुश थे, जो कि दोनों जवां थे और तभी तो एक समर्पण भाव कमरे के आईने में साफ–साफ झलकता नजर आता था।

मगर एक लंबे अंतराल के पश्चात् उस दिन वह दोनों किंचित् परेशान–परेशान से कहीं विचारों में लौलीन थे।

'हाँ–हाँ, उनके बीच स्त्री–पुरुष का एक रिश्ता जरूर रहा, लेकिन ये रिश्ता आखिर, माता–पिता का दर्जा क्यों नहीं हासिल कर पाया!

समवेत स्वर में उनकी खीज–झल्लाहट कमरे में गूँजी–उभरी थी और तुरंत ही मकान–मालिक को अपने कमरे का भुगतान करने के बाद वह दोनों सड़क पर अलग–अलग हो गये।

बहरहाल 'लिव–इन–रिलेशनशिप' की जीवनशैली उनको रास नहीं आई, नहीं तो उनके मध्य अलगाव की लंबी चादर हमेशा–हमेशा के वास्ते काहे को तनती!

लघुकथा

प्रो. (डा.) शरद नारायण खरे
प्राचार्य,
शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय मंडला,
(मो– 9425484382)

मुँह पर थप्पड़

मानसी और जयन्त बचपन से साथ–साथ पढ़े थे। एमबीए की पढ़ाई के बाद मानसी ने जॉब ली थी, उधर जयन्त ब्रेक लेकर सिविल सर्विस की तैयारी कर रहा था। दोनों की दोस्ती जब प्यार में बदली तो परिवार वालों की सहमति से दोनों की शादी तय कर दी गई। उनकी शादी को सिर्फ एक हफ्ता ही बचा था कि यू.पी.एस.सी. का रिजल्ट निकला और जयन्त की काफी अच्छी रेंक आने के कारण उसका आई.ए.एस प्रौपर में चयन हो गया था। दोनों परिवारों में खुशी का माहौल था कि एक दिन जयन्त के चाचा जी घर आये और शादी की खातिरदारी से लेकर दहेज की एक लम्बी लिस्ट थमाकर यह कहकर चले गये कि अब तो आपकी बेटी की शादी एक आईएएस से होने जा रही है, तो आपको उस
स्टैंडर्ड को ध्यान में रखकर शादी करनी होगी, वगैरह वगैरह।

मानसी को जब यह पता चला तो उसने जयंत को फोन किया। पहले तो जयंत ने मानसी का फोन अटैंड नहीं किया और जब फोन उठाया तो सीधे जवाब देने की बजाय टालमटोली करता रहा और जब मानसी ने सीधे–सीधे सवाल किया कि जयंत! तुम यह बताओ कि वह तुम्हारे जो चाचाजी दहेज की सूची दे गए हैं, तो वह क्या तुम्हारी जानकारी में है?''
'हाँ है तो।'
'क्या तुम उससे सहमत नहीं?'
'नहीं।'
'मतलब असहमत हो।'
'नहीं, मैंने ऐसा तो नहीं कहा।'
'मतलब यह कि वह सूची मेरे पापा व चाचा ने बनाई है, तो सहमत न होते हुए भी मुझे मानना पड़ेगा और फिर इसमें बुराई भी क्या है, आखिर तुम्हारी शादी आई.ए.एस. से जो हो रही है। तुम्हारे जीवन की शान व सुख–सुविधा से गुजरने की गारंटी भी तो है।'
'मतलब यह तुमलोगों का अंतिम फैसला है।'
'ऐसा ही समझो।'
'और हमारे प्यार का क्या?'
'वह तो हमने तब किया था. जब मैं आइ.ए.एस. नहीं था।– 'ओके, तो मैं इस रिश्ते को अभी खतम करती हूँ। मुझे नहीं करना दहेज के लालचियों के घर अपना रिश्ता।'
और फुफकारती हुई मानसी चली गई और जुट गई जी–जान से यू.पी.एस.सी. की तैयारी करने में।

लघुकथा

डॉ. आशा पुष्प,
बोकारो इस्पात नगर, झारखंड
फोन– 0431730045

अनिता

अनीता हमारी कामवाली, आज बहुत खुशी–खुशी दाखिल हुई। रोज मुँह लटकाए हताश सी आती और बीती रात अपने पीटे जाने की कथा सुनाकर दुखी कर जाती। अंत में रोज उसका एक ही सवाल होता–'मैंने प्रेम करके कौन सा अपराध किया है?' इस पति के लिए मैंने सब छोड़ा, दूसरों के जूठन धोती हूँ और मेरा पति...फिर सुबक उठती।

परंतु, आज उसकी चाल ही अलग थी। आते ही मेरी टेबल के बगल में पसरकर बैठ गई और कहना शुरू किया–जानती हो दीदी! कल रात तो चमत्कार हो गया, मेरा मरद मुझे पीटने के बाद घसीट कर घर से बाहर निकाल कर बोला–'यह तेरे बाप का घर नहीं है, अब कभी लौटकर मत आना, वरना टाँगे काट दूँगा, अपने पिल्लों को भी ले जाएँ। कहाँ जाऊँगी आधी रात को?मेरे इतना कहते ही उसके तीनों साथी हँसते हुए कहने लगे और मारो साली को, तब याद आएगा कि कहाँ जाना है। उसने मुझे धक्का देकर दरवाजा बंद कर दिया और चारों गांजा पीने लगे। झोंपड़ी की महिलाएँ झाँक–झाँककर देखती रही तमाशबीन बनकर और मैं रोती, बिलखती, तड़पती अपनी किस्मत को कोसती रही। झोपड़ी के पास वाली सड़क के किनारे रखे बड़े पत्थर पर जाकर बैठ गई, दोनों बच्चा मुझसे सटकर ऊँघ रहा था। तभी मेरे सामने एक गाड़ी आकर रुकी। उससे एक रौबदार कड़ी मूछों वाला व्यक्ति उतरा। मैं उसे देखकर भीतर–ही–भीतर सहम गई। उसने मुझसे कहा–'रात के दो बज रहे हैं, तुम यहाँ अकेली क्यों बैठी हो?'

'मेरे पति ने मुझे मार कर घर से निकाल दिया है।' मैंने आँसू पोछकर असहाय स्वर में कहा।

'मेरे साथ चलकर बताओ, तुम्हारा घर कहाँ है?' झोंपड़ी के सामने पहुँचते ही उसने रोबीले अंदाज में दरवाजा पीटने और जोर जोर से बोलना शुरू किया जितना तुम्हारा घर है, उतना ही इस औरत का भी। इसे घर से बाहर नहीं निकाल सकते, औरत खिलौना नहीं है। जल्दी दरवाजा खोलो वरना....उसने पुलिसिया लहजे में भारी–भरकम गाली दी। दरवाजा खुल गया, घर के अंदर उन चारों का कहीं भी पता नहीं था।
उसने मुझे एक कागज पर अपना पूरा नाम पता लिखकर हिदायत दी कि कोई दिक्कत हो मुझसे कहना मैं समझ गई, वह पेट्रोलिंग वाला था। उसके जाने के बाद मैंने झोपड़ी की पिछली दीवार के नीचे अपने पति को डर से थर–थर काँपता हुआ दुबका देखा, मुझे आत्मिक सुख मिला। अब वह कभी मेरे साथ अमानवीय हरकत नहीं करेगा, क्योंकि मेरे पास उस आदमी का पता है। हर समय हारी हुई उसकी आँखों में ऐसा दृढ़ विश्वास मुझे दिखा, मानो उसे कोई मजबूत कवच मिल गया हो।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303